कृष्ण भक्ति काव्य धारा

(Krishna Devotional Poetry Section)

रघुवर सिंह

कृष्ण भक्ति काव्य धारा

कृष्ण भक्ति काव्य धारा

(Krishna Devotional Poetry Section)

रघुवर सिंह

भाषा प्रकाशन

नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5506-9

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

भारतीय धर्म और संस्कृति के इतिहास में कृष्ण सदैव एक अद्‌भुत व विलक्षण व्यक्तित्त्व माने जाते रहे हैं। हमारे प्राचीन ग्रंथों में यत्र-तत्र कृष्ण का उल्लेख मिलता है, जिससे उनके जीवन के विभिन्न रूपों का पता चलता है।

श्रीकृष्ण विभिन्न रूपों में लौकिक और अलौकिक लीलाएँ दिखाने वाले अवतारी पुरुष हैं। गीता, महाभारत व विविध पुराणों में उन्ही के इन विविध रूपों के दर्शन होते हैं।

कृष्ण महाभारत काल में ही अपने समाज में पूजनीय माने जाते थे। वे समय समय पर सलाह देकर धर्म और राजनीति का समान रूप से संचालन करते थे। लोगों में उनके प्रति श्रद्धा और आस्था का भाव था। कृष्ण भक्ति काव्य धारा के कवियों ने अपनी कविताओं में राधा-कृष्ण की लीलाओं को प्रमुख विषय बनाकर बृहद् काव्य सृजन किया।

पुष्टिमार्ग प्रारंभ हुआ तो बाल कृष्ण की उपासना का ही चलन था। अतः कवियों ने कृष्ण के बाल रूप को पहले पहले चित्रित किया। यदि वात्सल्य रस का नाम लें तो सबसे पहले सूरदास का नाम आता है, जिन्हें आप इस विषय का विशेषज्ञ कह सकते हैं। उन्होंने कान्हा के बचपन की सूक्ष्म से सूक्ष्म गतिविधियाँ भी ऐसी चित्रित की है, मानो वे स्वयं वहाँ उपस्थित हों।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**कृष्ण**	**1**
	नाम और उपशीर्षक	2
	चित्रण	2
	ऐतिहासिक और साहित्यिक स्रोत	3
	इंडो-यूनानी मुद्रण	4
	हेलीओडोरस स्तंभ और अन्य शिलालेख	4
	जीवन और किवदंतियाँ	5
	संभावित तिथियाँ	9
	दर्शन और धर्मशास्त्र	10
	प्रभाव	11
	प्रदर्शन कला	14
	अन्य धर्म	15
	कृष्ण भक्ति काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएँ	17
2.	**भक्तिकाल के कवि**	**23**
	सूरदास	23
	कृतियाँ	24
	संत शिरोमणि रविदास	24

रविदास जी के पद 25
व्यास जी 26
स्वामी हरिदास 27
मीराबाई 27
गदाधर भट्ट 28
हितहरिवंश 29
गोविन्दस्वामी 29
छीतस्वामी 29
चतुर्भुजदास 30
कुंभनदास 30
परमानंद 30
कृष्णदास 31
श्रीभट्ट 31
सूरदास मदनमोहन 32
नंददास 32
कृतियाँ 33
चैतन्य महाप्रभु 33
3. कबीर 37
जीवन 37
भाषा 38
कृतियां 38
धर्म के प्रति 38
कबीर साहब की सुन्नत 41
कुर्बानी 42
बालक कबीर का काफिर की व्याख्या करना 46
कबीर साहब को गुरु के समान मानना 49
कबीर का साहित्यिक परिचय 51
काव्यरूप एवं संक्षिप्त परिचय 53
साखी 53
व्यवहार प्रधान साखियाँ 55
परलौकिक भाव प्रधान साखियाँ 56

रमैनी 57
चौंतीसा 57
बावनी 58
विप्रमतीसी 58
वार 58
थिंती 58
चाँचर 58
बसंत 59
हिंडोला 59
बेलि 60
कहरा 60
बिरहुली 61
उलटवाँसी 61
धर्म विरोध संबंधी उलटवाँसिया 61
कबीर की साखी 62
4. तुलसीदास **80**
जन्म 80
बचपन 81
भगवान श्री राम जी से भेंट 82
संस्कृत में पद्य-रचना 83
रामचरितमानस की रचना 84
मृत्यु 85
तुलसी-स्तवन 85
तुलसीदास की रचनाएँ 86
कुछ ग्रंथों का संक्षिप्त विवरण 88
जानकी-मंगल 89
रामाज्ञा प्रश्न 89
5. सूरदास **92**
जीवन परिचय 92
सूरदास की जन्मतिथि एवं जन्मस्थान के विषय में मतभेद 92
रचनाएँ 94

कृष्ण काव्य परम्परा और सूरदास 101
कृष्ण-भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि और विकास 101
कृष्ण-भक्ति काव्य का आरम्भ 102
कृष्ण-भक्ति काव्य परम्परा और प्रमुख कवि 102
हिन्दी कृष्ण-काव्य परम्परा और सूर का काव्य 107
कृष्ण-काव्य परम्परा में सूर का स्थान 107
निष्कर्ष 110
6. कुम्भनदास 112
परिचय 113
दीक्षा 113
श्रीनाथ जी की सेवा व गायन 113
भगवान श्रीनाथ से स्नेह 114
अकबर के समक्ष गायन 115
मानसिंह द्वारा सराहना 115
शरीर त्याग 116
रचनायें 116
7. चतुर्भुजदास 118
जीवन परिचय 118
रचनाएँ 118
माधुर्य भक्ति का वर्णन 119
8. स्वामी हरिदास 120
जीवन परिचय 120
वृन्दावन प्रस्थान 121
सखी-सम्प्रदाय 121
हरिदास सम्प्रदाय 122
टीका 123
अन्य तथ्य 123
ग्राउस के विचार 126
राग गोरी 127
राग विभास 128
हरिदास के स्वामी श्याम कुंज बिहारी 128

राग बिलावल 128
राग कल्यान 130
राग बरारी 130
राग कान्हरो 130
सम्बंधित प्रसंग 131
9. सूरदास मदनमोहन 133
परिचय 133
रचनाएँ 134
माधुर्य भक्ति का वर्णन 134
10. हरिराम व्यास 136
परिचय 136
राघावल्लभीय संप्रदाय के मूल तत्त्व 137
दीक्षा–गुरु 137
रचनाएँ 138
माधुर्य भक्ति का वर्णन 138
11. ध्रुवदास 140
रचनाएँ 141
भक्ति माधुर्य का वर्णन 141
12. रैदास 143
जन्म 144
व्यक्तित्त्व 144
वचनबद्धता 144
शिक्षा 145
सत्संग 145
सत्य 146
साधना 146
धर्म 147
भक्ति 147
समाज पर प्रभाव 147

1

कृष्ण

श्रीकृष्ण भगवान विष्णु के 8वें अवतार और हिन्दू धर्म के ईश्वर माने जाते हैं। कन्हैया, श्याम, गोपाल, केशव, द्वारकेश या द्वारकाधीश, वासुदेव आदि नामों से भी उनको जाना जाता हैं। कृष्ण निष्काम कर्मयोगी, एक आदर्श दार्शनिक, स्थितप्रज्ञ एवं दैवी संपदाओं से सुसज्ज महान पुरुष थे। उनका जन्म द्वापरयुग में हुआ था। उनको इस युग के सर्वश्रेष्ठ पुरुष युगपुरुष या युगावतार का स्थान दिया गया है। कृष्ण के समकालीन महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित श्रीमद्भागवत और महाभारत में कृष्ण का चरित्र विस्तृत रूप से लिखा गया है। भगवद्गीता कृष्ण और अर्जुन का संवाद है, जो ग्रंथ आज भी पूरे विश्व में लोकप्रिय है। इस कृति के लिए कृष्ण को जगतगुरु का सम्मान भी दिया जाता है। कृष्ण वसुदेव और देवकी की 8वीं संतान थे। मथुरा के कारावास में उनका जन्म हुआ था और गोकुल में उनका लालन-पालन हुआ था। यशोदा और नन्द उनके पालक माता पिता थे। उनका बचपन गोकुल में व्यतीत हुआ। बाल्य अवस्था में ही उन्होंने बड़े बड़े कार्य किये, जो किसी सामान्य मनुष्य के लिए सम्भव नहीं थे। मथुरा में मामा कंस का वध किया। सौराष्ट्र में द्वारका नगरी की स्थापना की और वहां अपना राज्य बसाया। पांडवों की मदद की और विभिन्न आपत्तियों में उनकी रक्षा की। महाभारत के युद्ध में उन्होंने अर्जुन के सारथी की भूमिका निभाई और भगवद्गीता का ज्ञान दिया जो उनके जीवन की सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। 124 वर्षों के जीवनकाल के बाद उन्होंने अपनी लीला समाप्त की। उनके अवतार

समाप्ति के तुरंत बाद परीक्षित के राज्य का कालखंड आता है। राजा परीक्षित, जो अभिमन्यु और उत्तरा के पुत्र तथा अर्जुन के पौत्र थे, के समय से ही कलियुग का आरंभ माना जाता है।

नाम और उपशीर्षक

'कृष्ण' मूलत: एक संस्कृत शब्द है, जो 'काला', 'अंधेरा' या 'गहरा नीला' का समानार्थी है। 'अंधकार' शब्द से इसका सम्बन्ध ढलते चंद्रमा के समय को कृष्ण पक्ष कहे जाने में भी स्पष्ट झलकता है। इस नाम का अनुवाद कहीं-कहीं 'अति-आकर्षक' के रूप में भी किया गया है।

श्रीमद भागवत पुराण के वर्णन अनुसार कृष्ण जब बाल्यावस्था में थे तब नन्दबाबा के घर आचार्य गर्गाचार्य द्वारा उनका नामकरण संस्कार हुआ था। नाम रखते समय गर्गाचार्यने बताया कि, 'यह पुत्र प्रत्येक युग में अवतार धारण करता है। कभी इसका वर्ण श्वेत, कभी लाल, कभी पीला होता है। पूर्व के प्रत्येक युगों में शरीर धारण करते हुए इसके तीन वर्ण हो चुके हैं। इस बार कृष्णवर्ण का हुआ है, अत: इसका नाम कृष्ण होगा।' चन्द्रवंशी क्षत्रिय वसुदेव का पुत्र होने के कारण उसका अतिरिक्त नाम वासुदेव भी रखा गया। 'कृष्ण' नाम के अतिरिक्त भी कृष्ण भगवान को कई अन्य नामों से जाना जाता रहा है, जो उनकी कई विशेषताओं को दर्शाते हैं। सबसे व्यापक नामों में मोहन, गोविन्द, माधव और गोपाल प्रमुख हैं।

चित्रण

कृष्ण भारतीय संस्कृति में कई विधाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका चित्रण आमतौर पर विष्णु जैसे कृष्ण, काले या नीले रंग की त्वचा के साथ किया जाता है। हालांकि, प्राचीन और मध्ययुगीन शिलालेख,भारत और दक्षिणपूर्व एशिया दोनों में और पत्थर की मूर्तियों में उन्हें प्राकृतिक रंग में चित्रित किया है, जिससे वह बनी है। कुछ ग्रंथों में, उनकी त्वचा को काव्य रूप से जांबुल (जामुन, बैंगनी रंग का फल) के रंग के रूप में वर्णित किया गया है।

कृष्ण को अक्सर मोर-पंख वाले पुष्प या मुकुट पहनकर चित्रित किया जाता है और अक्सर बांसुरी (भारतीय बांसुरी) बजाते हुए उनका चित्रण हुआ है। इस रूप में, आम तौर पर त्रिभन्ग मुद्रा में दूसरे के सामने एक पैर को दूसरे पैर पर डाले चित्रित है। कभी-कभी वह गाय या बछड़े के साथ होते है, जो

चरवाहे गोविंद के प्रतीक को दर्शाती है। अन्य चित्रण में, वे महाकाव्य महाभारत के युद्ध के दृश्यों का एक हिस्सा है। वहां उन्हें एक सारथी के रूप में दिखाया जाता है, विशेष रूप से जब वह पांडव राजकुमार अर्जुन को संबोधित कर रहे हैं, जो प्रतीकात्मक रूप से हिंदू धर्म का एक ग्रंथ,भगवद् गीता को सुनाते हैं। इन लोकप्रिय चित्रणों में, कृष्ण कभी पथ प्रदर्शक के रूप में सामने में प्रकट होते हैं, या तो दूरदृष्टा के रूप में, कभी रथ के चालक के रूप में।

कृष्ण के वैकल्पिक चित्रण में उन्हें एक बालक (बाल कृष्ण) के रूप में दिखाते हैं, एक बच्चा अपने हाथों और घुटनों पर रेंगते हुए,नृत्य करते हुए, साथी मित्र ग्वाल बाल को चुराकर मक्खन देते हुए (मक्खन चोर), लड्डू को अपने हाथ में लेकर चलते हुए (लड्डू गोपाल) अथवा प्रलय के समय बरगद के पत्ते पर तैरते हुए एक आलौकिक शिशु, जो अपने पैर की अंगुली को चूसता प्रतीत होता है। (ऋषि मार्कंडेय द्वारा विवरणित ब्रह्मांड विघटन) कृष्ण की प्रतिमा में क्षेत्रीय विविधताएं उनके विभिन्न रूपों में देखी जाती हैं, जैसे ओडिशा में जगन्नाथ, महाराष्ट्र में विट्ठल या विठोबा।, राजस्थान में श्रीनाथ जी, गुजरात में द्वारकाधीश और केरल में गुरुवायरुप्पन अन्य चित्रणों में उन्हें राधा के साथ दिखाया जाता है, जो राधा और कृष्ण के दिव्य प्रेम का प्रतीक माना जाता है। उन्हें कुरुक्षेत्र युद्ध में विश्वरूप में भी दिखाया जाता है, जिसमें उनके कई मुख हैं और सभी लोग उनके मुख में जा रहे हैं। अपने मित्र सुदामा के साथ भी उनको दिखाया जाता है, जो मित्रता का प्रतीक है।

वास्तुकला में कृष्ण चिह्नों एवं मूर्तियों के लिए दिशानिर्देशों का वर्णन मध्यकालीन युग में हिन्दू मंदिर कलाओं जैसे वैखानस अगम, विष्णु धर्मोत्तर पुराण, बृहत् संहिता और अग्नि पुराण में वर्णित है। इसी तरह, मध्यकालीन युग के शुरुआती तमिल ग्रंथों में कृष्ण और रुक्मिणी की मूर्तियां भी सम्मिलित हैं। इन दिशानिर्देशों के अनुसार बनाई गई कई मूर्तियां सरकारी संग्रहालय,चेन्नई के संग्रह में हैं।

ऐतिहासिक और साहित्यिक स्त्रोत

एक व्यक्तित्त्व के रूप में कृष्ण का विस्तृत विवरण सबसे पहले महाकाव्य महाभारत में लिखा गया है, जिसमें कृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में दर्शाया गया है। महाकाव्य की मुख्य कहानियों में से कई कृष्ण केंद्रित हैं। श्री भगवद् गीता का निर्माण करने वाले महाकाव्य के छठे पर्व (भीष्म पर्व) के अठारहवे

अध्याय में युद्ध के मैदान में अर्जुन की ज्ञान देते हैं। महाभारत के बाद के परिशिष्ट में हरिवंश में कृष्ण के बचपन और युवावस्था का एक विस्तृत संस्करण है।

इंडो-यूनानी मुद्रण

180 ईसा पूर्व लगभग इंडो-ग्रीक राजा **एगैथोकल्स** ने देवताओं की छवियों पर आधारित कुछ सिक्के जारी किये जिन्हें अब भारत में वैष्णव दर्शन से संबंधित होने के रूप में व्याख्या की जाती है। सिक्कों पर प्रदर्शित देवताओं को विष्णु के अवतार बलराम-संकर्षण के रूप में देखा जाता है, जिसमें गदा और हल और वासुदेव-कृष्ण, शंख और सुदर्शन चक्र दर्शाये हुए हैं। प्राचीन संस्कृत व्याकरणकारी **पतंजलि** ने अपने महाभाष्य में भारतीय ग्रंथों के देवता कृष्ण और उनके सहयोगियों के कई संदर्भों का उल्लेख किया है। पाणिनी की श्लोक 3. 1.26 पर अपनी टिप्पणी में, वह कंसवध अथवा कंस की हत्या का भी प्रयोग करते हैं, जो कि कृष्ण से सम्बन्धित किंवदंतियों का एक महत्वपूर्ण अंग है।

हेलीओडोरस स्तंभ और अन्य शिलालेख

मध्य भारतीय राज्य मध्य प्रदेश में औपनिवेशिक काल के पुरातत्त्वविदों ने एक ब्राह्मी लिपि में लिखे शिलालेख के साथ एक स्तंभ की खोज की थी। आधुनिक तकनीकों का उपयोग करते हुए, इसे 125 और 100 ईसा पूर्व के बीच का घोषित किया गया है और ये निष्कर्ष निकाला गया कि यह एक इंडो-ग्रीक प्रतिनिधि द्वारा एक क्षेत्रीय भारतीय राजा के लिए बनवाया गया था, जो ग्रीक राजा एंटिलासिडास के एक राजदूत के रूप में उनका प्रतिनिधि था। इसी इंडो-ग्रीक के नाम अब इसे हेलेडियोरस स्तंभ के रूप में जाना जाता है। इसका शिलालेख 'वासुदेव' के लिए समर्पण है, जो भारतीय परंपरा में कृष्ण का दूसरा नाम है। कई विद्वानों का मत है कि इसमें 'वासुदेव' नामक देवता का उल्लेख हैं, क्योंकि इस शिलालेख में कहा गया है कि यह 'भागवत हेलियोडोरस' द्वारा बनाया गया था यह 'गरुड़ स्तंभ' (दोनों विष्णु-कृष्ण-संबंधित शब्द हैं)। इसके अतिरिक्त, शिलालेख के एक अध्याय में कृष्ण से संबंधित कविता भी शामिल है। महाभारत के अध्याय 11.7 का सन्दर्भ देते हुए बताया गया है कि अमरता और स्वर्ग का रास्ता सही ढंग से तीन गुणों का जीवन जीना है–स्व-संयम (दमः), उदारता (त्याग) और सतर्कता (अप्रामदाह)।

हेलियोडोरस शिलालेख एकमात्र प्रमाण नहीं है। तीन हाथीबाड़ा शिलालेख और एक घोसूंडी शिलालेख, जो कि राजस्थान राज्य में स्थित हैं और आधुनिक कार्यप्रणाली के अनुसार, जिनका समयकाल 19वी सदी ईसा पूर्व है, उनमे भी कृष्ण का उल्लेख किया गया है। पहली सदी ईसा पूर्व, संकर्षण (कृष्ण का एक नाम) और वासुदेव का उल्लेख करते हुए, उनकी पूजा के लिए एक संरचना का निर्माण किया गया था। ये चार शिलालेख प्राचीनतम ज्ञात संस्कृत शिलालेखों में से एक हैं।

कई पुराणों में कृष्ण की जीवन कथा को बताया या कुछ इस पर प्रकाश डाला गया है। दो पुराण, भागवत पुराण और विष्णु पुराण में कृष्ण की कहानी की सबसे विस्तृत जानकारी है, लेकिन इन और अन्य ग्रंथों में कृष्ण की जीवन कथाएं अलग-अलग हैं और इसमें महत्वपूर्ण असंगतियां हैं। भागवत पुराण में बारह पुस्तकें उप-विभाजित हैं, जिनमें 332 अध्याय, संस्करण के आधार पर 16,000 और 18,000 छंदों के बीच संचित है। पाठ की दसवीं पुस्तक, जिसमें लगभग 4000 छंद (~ 25%) शामिल हैं और कृष्ण के बारे में किंवदंतियों को समर्पित है, इस पाठ का सबसे लोकप्रिय और व्यापक रूप से अध्ययन किया जाने वाला अध्याय है।

जीवन और किवदंतियाँ

अवतरण एवं महाप्रयाण

कृष्ण का जन्म भाद्रपद मास में कृष्ण पक्ष में अष्टमी तिथि, रोहिणी नक्षत्र के दिन रात्रि के 12 बजे हुआ था। कृष्ण का जन्मदिन जन्माष्टमी के नाम से भारत, नेपाल, अमेरिका सहित विश्वभर में मनाया जाता है। कृष्ण का जन्म मथुरा के कारागार में हुआ था। वे माता देवकी और पिता वासुदेव की 8वीं संतान थे। श्रीमद भागवत के वर्णन अनुसार द्वापरयुग में भोजवंशी राजा उग्रसेन मथुरा में राज करते थे। उनका एक आततायी पुत्र कंस था और उनकी एक बहन देवकी थी। देवकी का विवाह वसुदेव के साथ हुआ था। कंस ने अपने पिता को कारगर में डाल दिया और स्वयं मथुरा का राजा बन गया। कंस की मृत्यु उनके भानजे, देवकी के 8वीं संतान के हाथों होनी थी। कंस ने अपनी बहन और बहनोई को भी मथुरा के कारगर में कैद कर दिया और एक के बाद एक देवकी की सभी संतानों को मार दिया। कृष्ण का जन्म आधी रात को हुआ तब कारागृह के द्वार

स्वत: ही खुल गए और सभी सिपाही निंद्रा में थे। वासुदेव के हाथो में लगी बेड़िया भी खुल गई। गोकुल के निवासी नन्द की पत्नी यशोदा को भी संतान का जन्म होने वाला था। वासुदेव अपने पुत्र को सूप में रखकर कारागृह से निकल पड़े।

कई भारतीय ग्रंथों में कहा गया है कि पौराणिक कुरुक्षेत्र युद्ध (महाभारत के युद्ध) में गांधारी के सभी सौ पुत्रों की मृत्यु हो जाती है। दुर्योधन की मृत्यु से पहले रात को, कृष्ण ने गांधारी को उनकी संवेदना प्रेषित की थी। गांधारी कृष्ण पर आरोप लगाती है कि कृष्ण ने जानबूझ कर युद्ध को समाप्त नहीं किया, क्रोध और दु:ख में उन्हें श्राप देती हैं कि उनके अपने 'यदु राजवंश' में हर व्यक्ति उनके साथ ही नष्ट हो जाएगा। महाभारत के अनुसार, यादव के बीच एक त्यौहार में एक लड़ाई की शुरुआत हो जाती है, जिसमें सब एक-दूसरे की हत्या करते हैं। कुछ दिनों बाद एक वृक्ष के नीचे नींद में सो रहे कृष्ण को एक हिरण समझ कर, जरा नामक शिकारी तीर मारता है, जो उन्हें घातक रूप से घायल करता है। कृष्ण जरा को क्षमा करते हैं और देह त्याग देते हैं। गुजरात में भालका की तीर्थयात्रा (तीर्थ) स्थल उस स्थान को दर्शाता है, जहां कृष्ण ने अपना अवतार समाप्त किया तथा वापस वैकुण्ठ को गए। यह देहोतसर्ग के नाम से भी जाना जाता है। भागवत पुराण, अध्याय 31 में कहा गया है कि उनकी मृत्यु के बाद, कृष्ण अपने योगिक एकाग्रता की वजह से सीधे वैकुण्ठ में लौटे। ब्रह्मा औरइंद्र जैसे प्रतीक्षारत देवताओं को भी कृष्ण को अपने मानव अवतार छोड़ने और वैकुण्ठ लौटने के लिए मार्ग का पता नहीं लगा।

बाल्यकाल और युवावस्था

कृष्ण ने देवकी और उनके पति, चंद्रवंशी क्षत्रिय वासुदेव के यहां जन्म लिया। देवकी का भाई कंस नामक दुष्ट राजा था। पौराणिक उल्लेख के अनुसार देवकी के विवाह में कंस को भविष्यद्वक्ताओं ने बताया कि देवकी के पुत्र द्वारा उसका वध निश्चित है। कंस देवकी के सभी बच्चों को मारने की व्यवस्था करता है। जब कृष्ण जन्म लेते हैं, वासुदेव चुपके से शिशु कृष्ण को यमुना के पार ले जाते हैं और एक अन्य शिशु बालिका के साथ उनका आदान-प्रदान करते हैं। जब कंस इस नवजात शिशु को मारने का प्रयास करता है, तब शिशु बालिका हिंदू देवी दुर्गा के रूप में प्रकट होती है, तथा उसे चेतावनी देते हुए कि उनकी मृत्यु उसके राज्य में आ गई है, लोप हो जाती है। पुराणों में किंवदंतियों के

अनुसार,कृष्ण, नंद और उनकी पत्नी यशोदा के साथ आधुनिक काल के मथुरा के पास पालते बढ़ते हैं। इन पौराणिक कथाओं के अनुसार, कृष्ण के दो भाई-बहन भी रहते हैं,बलराम और सुभद्रा। कृष्ण के जन्म का दिन कृष्ण जन्माष्टमी के रूप में मनाया जाता है।

वयस्कता

भागवत पुराण कृष्ण की आठ पत्नियों का वर्णन करता है, जो इस अनुक्रम में(रुक्मिणी, सत्यभामा, जामवंती, कालिंदी, मित्रवृंदा, नाग्नजिती (जिसे सत्य भी कहा जाता है),भद्रा और लक्ष्मणा (जिसे मद्रा भी कहते हैं) प्रकट होती हैं। **डेनिस हडसन** के अनुसार, यह एक रूपक है, आठों पत्नियां उनके अलग पहलू को दर्शाती हैं। **जॉर्ज विलियम्स** के अनुसार, वैष्णव ग्रंथों में कृष्ण की पत्नियों के रूप में सभी गोपियों का उल्लेख है, लेकिन यह सभी भक्ति एवं आध्यात्मिक सम्बन्ध का प्रतीक है और प्रत्येक के लिए कृष्ण पूर्ण श्रद्धेय है। उनकी पत्नी को कभी-कभी रोहिणी, राधा, रुक्मिणी, स्वामीनिजी या अन्य कहा जाता है। कृष्ण-संबंधी हिंदू परंपराओं में, वह राधा के साथ सबसे अधिक चित्रित होते हैं। उनकी सभी पत्नियों को और उनके प्रेमिका राधा को हिंदू परंपरा में विष्णु की पत्नी देवी लक्ष्मी के अवतार के रूप में माना जाता है। गोपियों को राधा के कई रूप और अभिव्यक्तियों के रूप में माना जाता है।

कुरुक्षेत्र का महाभारत युद्ध

महाभारत के अनुसार, कृष्ण कुरुक्षेत्र युद्ध के लिए अर्जुन के सारथी बनते हैं, लेकिन इस शर्त पर कि वह कोई भी हथियार नहीं उठाएंगे। दोनों के युद्ध के मैदान में पहुंचने के बाद और यह देखते हुए कि दुश्मन उसके अपने परिवार के सदस्य, उनके दादा और उनके चचेरे भाई और प्रियजन हैं, अर्जुन क्षोभ में डूब जाते हैं और कहते है कि उनका हृदय उन्हें अपने परिजनों से लड़ने और मारने की अनुमति नहीं देगा। वह राज्य को त्यागने के लिए और अपने गाण्डीव (अर्जुन के धनुष) को छोड़ने के लिए तत्पर हो जाते है। कृष्ण तब उसे जीवन, नैतिकता और नश्वरता की प्रकृति के बारे में ज्ञान देते है। जब किसी को अच्छे और बुरे के बीच युद्ध का सामना करना पड़ता है तब, परिस्थिति की स्थिरता, आत्मा की स्थायीता और अच्छे बुरे का भेद ध्यान में रखते हुए, कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को निभाते हुए, वास्तविक शांति की प्रकृति और आनंद और

विभिन्न प्रकार के योगों को आनंद और भीतर की मुक्ति के लिए ऐसा योग अनिवार्य होता है। कृष्ण और अर्जुन के बीच बातचीत को भगवद् गीता नामक एक ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

श्रीमद भगवद्गीता

कुरु क्षेत्र की युद्धभूमि में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया था वह श्रीमद्भगवदगीता के नाम से प्रसिद्ध है। सभी हिन्दू ग्रंथों में, श्रीमद भगवत गीता को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि इसमें एक व्यक्ति के जीवन का सार है और इसमें महाभारत काल से द्वापर तक कृष्ण के सभी लीलाओ का वर्णन हैं। ऐसी मान्यता है कि यह महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित है हालांकि, इसमें कोई प्रमाण नहीं है, लेकिन भगवद् गीता एक पुस्तक है, जो अर्जुन और उनके सारथी श्री कृष्ण के बीच वार्तालाप पर आधारित है। गीता में कर्मयोग, भक्ति योग, राजयोग, एक ईश्वरावाद आदि पर बहुत ही सुंदर तरीके से चर्चा की गई है।

संस्करण और व्याख्याएं

कृष्ण की जीवन कथा के कई संस्करण हैं, जिनमें से तीन का सबसे अधिक अध्ययन किया गया है–हरिवंश, भागवत पुराण और विष्णु पुराण। ये सब मूल कहानी को ही दर्शाते हैं, लेकिन उनकी विशेषताओं, विवरण और शैलियों में काफी भिन्नता हैं। सबसे मूल रचना, हरिवंश को एक यथार्थवादी शैली में बताया गया है, जो कृष्ण के जीवन को एक गरीब ग्वाले के रूप में बताता है, लेकिन काव्यात्मक और अलौकिक कल्पना से ओतप्रोत है। यह कृष्ण की अवतार समाप्ति के साथ समाप्त नहीं होती। कुछ विवरणों के अनुसार विष्णु पुराण की पांचवीं पुस्तक हरिवंश के यथार्थवाद से दूर हो जाती है और कृष्ण को रहस्यमय शब्दों और स्तम्भों में आवरण करती है, कई संस्करणों में विष्णु पुराण की पांडुलिपियां मौजूद हैं।

भागवत पुराण की दसवीं और ग्यारहवीं पुस्तकों को व्यापक रूप से एक कविष्ठ कृति माना जाता है, जो कि कल्पना और रूपकों से भरा हुआ है, हरिवंश में पाये जाने वाले जीवों के यथार्थवाद से कोई संबंध नहीं है। कृष्ण के जीवन को एक ब्रह्मांडीय नाटक (लीला) के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जहां उनके पिता धर्मगुरू नंद को एक राजा के रूप में पेश किया गया था। कृष्ण का जीवन हरिवंश में एक इंसान के करीब है, लेकिन भागवत पुराण में एक प्रतीकात्मक

ब्रह्मांड है, जहां कृष्ण ब्रह्मांड के भीतर हैं और इसके अलावा, साथ ही ब्रह्मांड ही हमेशा से है और रहेगा। कई भारतीय भाषाओं में भागवत पुराण पांडुलिपियां कई संस्करणों में भी मौजूद हैं।

संभावित तिथियाँ

कृष्ण का जन्म हर साल जन्माष्टमी के रूप में मनाया जाता है। महाभारत और कुछ पुराणों में किंवदंतियों के अनुसार घटनाओं के आधार पर यह कहा जाता है कि कृष्ण एक वास्तविक ऐतिहासिक व्यक्ति थे। उदाहरण के लिए, लावण्य **वेंसानी** कहते हैं कि कृष्ण का पुराणों में 3227 ईसा पूर्व-3102 ईसा पूर्व के बीच होने का अनुमान लगाया जा सकता है। इसके विपरीत, जैन परंपरा में पौराणिक कथाओं के अनुसार **कृष्ण नेमिनाथ** के चचेरे भाई थे, जो जैनों के 22 वें तीर्थंकर थे। 9वीं शताब्दी से जैन परंपरा में मानना है कि नेमिनाथ 84,000 वर्ष पहले पैदा हुए। गाय बेक कहती हैं कि कृष्ण-चाहे मानव हो या दिव्यअवतार-प्राचीन भारत में वास्तविक व्यक्ति को दर्शाता है, जो कम से कम 1000 ईसा पूर्व रहते थे, लेकिन इन ऐतिहासिक प्रमाणों से, विशुद्ध रूप से संस्कृत सिद्धांत के अध्ययन से, यह प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है।

लुडो रोशेर और **हजरा** जैसे अन्य विद्वानों का कहना है कि पुराण 'भारतीय इतिहास' के लिए एक विश्वसनीय स्रोत नहीं हैं, क्योंकि इसमें राजाओं, विभिन्न लोगों, ऋषियों और राज्यों के बारे में लिखी गई पांडुलिपियों में विसंगतियां हैं। वे कहते हैं कि ये कहानियां संभवतया वास्तविक घटनाओं पर आधारित हैं, जो कि विज्ञान पर आधारित हैं और कुछ भागों में कल्पना द्वारा सुशोभित हैं। उदाहरण के लिए मत्स्य पुराण में कहा गया है कि कूर्म पुराण में 18,000 छंद हैं, जबकि अग्नि पुराण में इसी पाठ में 8000 छंद हैं और नारदीय यह पुष्टि करते हैं कि कूर्म पांडुलिपि में 17,000 छंद हैं। पुराणिक साहित्य समय के साथ धीमी गति से बदला साथ ही साथ कई अध्यायों का अचानक विलोपन और इसकी नई सामग्री के साथ प्रतिस्थापित किया गया है। वर्तमान में परिणित पुराण उन लोगों के उल्लेख से पूरी तरह अलग हैं, जो 11वीं सदी, या 16वीं सदी से पहले मौजूद थे। उदाहरण के लिए, नेपाल में ताड़ पत्र पांडुलिपि की खोज 810 ईस्वी में हुई है, लेकिन वह पत्र,पुराने पाठ के संस्करणों से बहुत अलग है, जो दक्षिण एशिया में औपनिवेशिक युग के बाद से परिचालित हो रहा है।

दर्शन और धर्मशास्त्र

हिंदू ग्रंथों में धार्मिक और दार्शनिक विचारों की एक विस्तृत शृंखला,जो कृष्ण के माध्यम से प्रस्तुत की जाती है, रामानुज,जो एक हिंदू धर्मविज्ञानी थे एवं जिनके काम भक्ति आंदोलन में अत्यधिक प्रभावशाली थे, ने विशिष्टाद्वैत के संदर्भ में उन्हें प्रस्तुत किया। माधवचार्य, एक हिंदू दार्शनिक, जिन्होंने वैष्णववाद के हरिदास संप्रदाय की स्थापना की, कृष्ण के उपदेशों को द्वैतवाद (द्वैत) के रूप में प्रस्तुत किया। गौदिया वैष्णव विद्यालय के एक संत जीव गोस्वामी, कृष्ण धर्मशास्त्र को भक्ति योग और अचिंत भेद-अभेद के रूप में वर्णित करते थे।धर्मशास्त्री वल्ल्भाचार्य द्वारा कृष्ण के दिए गए ज्ञान को अद्वैत (जिसे शुद्धाद्वैत भी कहा जाता है) के रूप में प्रस्तुत किया, जो वैष्णववाद के पुष्टि पंथ के संस्थापक थे। भारत के एक अन्य दार्शनिक मधुसूदन सरस्वती, कृष्ण धर्मशास्त्र को अद्वैत वेदांत में प्रस्तुत करते थे, जबकि आदि शंकराचार्य, जो हिंदू धर्म में विचारों के एकीकरण और मुख्य धाराओं की स्थापना के लिए जाने जाते हैं, शुरुआती आठवीं शताब्दी में पंचायत पूजा पर कृष्ण का उल्लेख किया है।

कृष्ण पर एक लोकप्रिय ग्रन्थ भागवत पुराण,असम में एक शास्त्र की तरह माना जाता है, कृष्ण के लिए एक अद्वैत, सांख्य और योग की रूपरेखा का संश्लेषण करता है, लेकिन वह कृष्ण के प्रति प्रेमपूर्ण भक्ति के मार्ग पर चलते है। ब्रायंट भागवत पुराण में विचारों के संश्लेषण का इस प्रकार वर्णन करते हैं,

"भागवत का दर्शन, सांख्य, तत्त्वमीमांसा और भक्ति योग जैसी वेदांत शब्दावली का एक मिश्रण है। किताब ईश्वर की सबसे मानवीय रूप में कृष्ण की शिक्षाओं को बढ़ावा देती है।"

शेरिडन और **पिंटचमैन** दोनों ब्रायंट के विचारों की पुष्टि करते हैं और कहते हैं कि भगवत में वर्णित वेदांतिक विचार भिन्नता के साथ गैर-द्वैतवादी है। परंपरागत रूप से वेदांत, वास्तविकता में एक दूसरे पर आधारित है और भागवत यह भी प्रतिपादित करता है कि वास्तविकता एक दूसरे से जुड़ी हुई है और बहुमुखी है।

विभिन्न थियोलॉजीज और दर्शन के अलावा,सामान्यतः कृष्ण को दिव्य प्रेम का सार और प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसमें मानव जीवन और दिव्य का प्रतिबिंब है। कृष्ण और गोपियों की भक्ति और प्रेमपूर्ण किंवदंतियां और संवाद,दार्शनिक रूप से दिव्य और अर्थ के लिए मानव इच्छा के रूपकों

के समतुल्य माना जाता है और सार्वभौमिक शक्ति और मानव आत्मा के बीच का समन्वय है। कृष्ण की लीला प्रेम-और आध्यात्म का एक धर्मशास्त्र है। **जॉन कोल्लेर** के अनुसार, 'मुक्ति के साधन के रूप में प्रेम को प्रस्तुत नहीं किया जाता है, यह सर्वोच्च जीवन है'। मानव प्रेम भगवान का प्रेम है। हिंदू परंपराओं में अन्य ग्रंथ,जिनमें भगवद् गीता सम्मिलित है, ने कृष्ण के उपदेशों को कई भाष्य (टिप्पणी) लिखने के लिए प्रेरित किया है।

प्रभाव

वैष्णववाद

कृष्ण की पूजा वैष्णववाद का हिस्सा है, जो हिंदू धर्म की एक प्रमुख परंपरा है। कृष्ण को विष्णु का पूर्ण अवतार माना जाता है, या विष्णु स्वयं अवतरित हुए ऐसा माना जाता है। हालांकि, कृष्ण और विष्णु के बीच का सटीक संबंध जटिल और विविध है, कृष्ण के साथ कभी-कभी एक स्वतंत्र देवता और सर्वोच्च माना जाता है। वैष्णव विष्णु के कई अवतारों को स्वीकार करते हैं, लेकिन कृष्ण विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। शब्द कृष्णम और विष्णुवाद को कभी-कभी दो में भेद करने के लिए इस्तेमाल किया गया है, जिसका अर्थ है कि कृष्ण श्रेष्ठतम सर्वोच्च व्यक्ति है। सभी वैष्णव परंपराएं कृष्ण को विष्णु का आठवां अवतार मानती हैं, अन्य लोग विष्णु के साथ कृष्ण की पहचान करते हैं, जबकि गौड़ीया वैष्णववाद, वल्लभ संप्रदाय और निम्बार्क संप्रदाय की परंपराओं में कृष्ण को स्वामी भगवान का मूल रूप या हिंदू धर्म में ब्राह्मण की अवधारणा के रूप में सम्मान करते हैं। जयदेव अपने गीतगोविंद में कृष्ण को सर्वोच्च प्रभु मानते हैं, जबकि दस अवतार उनके रूप हैं। स्वामीनारायण संप्रदाय के संस्थापक स्वामीनारायण ने भगवान के रूप में कृष्ण की भी पूजा की। 'वृहद कृष्णवाद' वैष्णववाद में, वैसुलिक काल के वासुदेव और वैदिक काल के कृष्ण और गोपाल को प्रमुख मानते हैं। आज भारत के बाहर भी कृष्ण को मानने वाले एवं अनुसरण एवं विश्वास करने वालो की बहुत बड़ी संख्या है।

प्रारंभिक परंपराएं

प्रभु श्रीकृष्ण-वासुदेव ('कृष्ण, वसुदेव के पुत्र') ऐतिहासिक रूप से कृष्णवाद और वैष्णववाद में इष्ट देव के प्रारंभिक रूपों में से एक हैं। प्राचीन

काल में कृष्ण धर्म को प्रारंभिक इतिहास की एक महत्वपूर्ण परंपरा माना जाता है। इसके बाद, विभिन्न समान परंपराओं का एकीकरण हुआ इनमें प्राचीन भगवतवाद, गोपाला का पंथ, 'कृष्ण गोविंदा' (गौपालक कृष्ण), बालकृष्ण और 'कृष्ण गोपीवल्लभा' (कृष्ण प्रेमिका) सम्मिलित हैं। **आंद्रे कोटेर** के अनुसार, हरिवंश ने कृष्ण के विभिन्न पहलुओं के रूप में संश्लेषण में योगदान दिया।

भक्ति परंपरा

भक्ति परम्परा में आस्था का प्रयोग किसी भी देवता तक सीमित नहीं है। हालांकि, हिंदू धर्म के भीतर कृष्ण भक्ति परंपरा का एक महत्वपूर्ण और लोकप्रिय केंद्र रहा है, विशेषकर वैष्णव संप्रदायों में। कृष्ण के भक्तों ने लीला की अवधारणा को ब्रह्मांड के केंद्रीय सिद्धांत के रूप में माना, जिसका अर्थ है 'दिव्य नाटक'। यह भक्ति योग का एक रूप है, तीन प्रकार के योगों में से एक जिसका भगवान कृष्ण द्वारा भगवद् गीता में चर्चा की है।

भारतीय उपमहाद्वीप

दक्षिण में, खासकर महाराष्ट्र में, वारकरी संप्रदाय के संत कवियों जैसे ज्ञानेश्वर, नामदेव, जनाबाई, एकनाथ और तुकाराम ने विठोबा की पूजा को प्रोत्साहित किया। दक्षिणी भारत में, कर्नाटक के पुरंदरा दास और कनकदास ने उडुपी की कृष्ण की छवि के लिए समर्पित गीतों का निर्माण किया। गौड़ीय वैष्णववाद के रूपा गोस्वामी ने भक्ति-रसामृत-सिंधु नामक भक्ति के व्यापक ग्रन्थ को संकलित किया है। दक्षिण भारत में, श्री संप्रदाय के आचार्य ने अपनी कृतियों में कृष्ण के बारे में बहुत कुछ लिखा है, जिनमें अंडाल द्वारा थिरुपावई और वेदांत देसिका द्वारा गोपाल विमशती शामिल हैं। तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और केरल के राज्यों में कई प्रमुख कृष्ण मंदिर हैं और जन्माष्टमी दक्षिण भारत में व्यापक रूप से मनाए जाने वाले त्योहारों में से एक है।

एशिया के बाहर

1965 तक कृष्ण-भक्ति आंदोलन भारत के बाहर भक्तवेदांत स्वामी प्रभुपाद (उनके गुरु, भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर द्वारा निर्देशित)द्वारा फैलाया गया। अपनी मातृभूमि पश्चिम बंगाल से वे न्यूयॉर्क शहर गए थे। एक साल बाद 1966 में, कई अनुयायियों के सानिध्य में उन्होंने कृष्ण चेतना (इस्कॉन) के लिए

अंतर्राष्ट्रीय सोसायटी का निर्माण किया था, जिसे हरे कृष्ण आंदोलन के रूप में जाना जाता है। इस आंदोलन का उद्देश्य अंग्रेजी में कृष्ण के बारे में लिखना था और संत चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं को फैलाने का कार्य करना था तथा कृष्ण भक्ति के द्वारा पश्चिमी दुनिया के लोगों के साथ गौड़ीय वैष्णव दर्शन को साझा करना था। चैतन्य महाप्रभु की आत्मकथा में वर्णित जब उन्हें गया में दीक्षा दी गई थी तो उन्हें काली-संताराण उपनिषद् के छह शब्द की कविता, ज्ञान स्वरूप बताई गई थी, जो कि 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे' थी। गौड़ीय परंपरा में कृष्ण भक्ति के संदर्भ ने यह महामंत्र या महान मंत्र है। इसका जप हरि-नाम संचरित के रूप में जाना जाता था।

महा-मंत्र ने बीटल्स रॉक बैंड के **जॉर्ज हैरिसन** और **जॉन लेनन** का ध्यान आकर्षित किया और हैरिसन ने 1969 को लंदन स्थित राधा कृष्ण मंदिर में भक्तों के साथ मंत्र की रिकॉर्डिंग की। 'हरे कृष्ण मंत्र' शीर्षक से, यह गीत ब्रिटेन के संगीत सूची पर शीर्ष बीस तक पहुंच गया और यह पश्चिम जर्मनी और चेकोस्लोवाकिया में भी अत्यधिक लोकप्रिय रहा। उपनिषद् के मंत्र ने भक्तिवेदांत और कृष्ण को पश्चिम में इस्कॉन विचारों को लाने में मदद की। इस्कॉन ने पश्चिम में कई कृष्ण मंदिर बनाए, साथ ही दक्षिण अफ्रीका जैसे अन्य स्थानों में भी मंदिरों का निर्माण किया।

दक्षिण पूर्व एशिया

कृष्ण दक्षिणपूर्व एशियाई इतिहास और कला में पाए जाते हैं, लेकिन उनका शिव, दुर्गा, नंदी,अगस्त्य और बुद्ध की तुलना में बहुत कम उल्लेख है। जावा, इंडोनेशिया में पुरातात्विक स्थलों के मंदिरों (कैंडी) में उनके गांव के जीवन या प्रेमी के रूप में उनकी भूमिका का चित्रण नहीं है और न ही जावा के ऐतिहासिक हिंदू ग्रंथों में इसका उल्लेख है। इसके बजाए, उनका बाल्य काल अथवा एक राजा और अर्जुन के साथी के रूप में उनके जीवन को अधिक उल्लेखित किया गया है।

कृष्ण की कलाओं को, योगकार्ता के निकट सबसे विस्तृत मंदिर, प्रम्बनन हिंदू मंदिर परिसर में,कृष्णायण मंदिरों की एकशृंखला के रूप में उकेरा गया है। ये 9वीं शताब्दी ईस्वी के हैं। कृष्ण 14 वीं शताब्दी ईस्वी के मध्य से जावा सांस्कृतिक और धार्मिक परम्पराओं का हिस्सा बने रहे। पनातरान के अवशेषों के अनुसार पूर्व जावा में हिंदू भगवान राम के साथ इनके मंदिर प्रचलन में थे और

तब तक रहे जब तक कि इस्लाम ने द्वीप पर बौद्ध धर्म और हिंदू धर्म की जगह ली।

वियतनाम और कंबोडिया की मध्यकालीन युग में कृष्ण कला की विशेषता है। सबसे पहले जीवंत मूर्तियां और अवशेष 6 वीं और 7 वीं शताब्दी ईस्वी के प्राप्त हुए हैं, इन में वैष्णववाद प्रतिमा का समावेश है। **जॉन गाइ,** एशियाई कलाओं के निर्देशक,के अनुसार मेट्रोपोलिटन म्यूजियम ऑफ साउथ ईस्ट एशिया में, दानंग में 6 वीं/7 वीं शताब्दी ईस्वी के वियतनाम के कृष्ण गोवर्धन कला और 7 वीं शताब्दी के कंबोडिया, अंगकोर 'बोरी में फ्नॉम दा' गुफा में, इस युग के सबसे परिष्कृत मंदिर हैं।

सूर्य और विष्णु के साथ कृष्ण की प्रतिमाओं को थाईलैंड में भी पाया गया है, सी-थेप में बड़ी संख्या में मूर्तियां और चिह्न पाए गए हैं। उत्तरी थाइलैंड के फीटबुन क्षेत्र में थिप और कलाग्ने स्थलों पर, फनान और झेंला काल के पुरातात्विक स्थलों से, ये 7 वीं और 8 वीं शताब्दी के अवशेष पाए गए हैं।

प्रदर्शन कला

भारतीय नृत्य और संगीत थिएटर प्राचीन ग्रंथों जैसे वेद और नाट्यशास्त्र ग्रंथों को अपना आधार मानते हैं। हिंदू ग्रंथों में पौराणिक कथाओं और किंवदंतियों से प्रेरित कई नृत्यनाटिकाओं को और चलचित्रों को, जिसमें कृष्ण-संबंधित साहित्य जैसे हरिवंश और भागवत पुराण शामिल हैं,अभिनीत किया गया है।

कृष्ण की कहानियों ने भारतीय थियेटर, संगीत और नृत्य के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, विशेष रूप से रासलीला की परंपरा के माध्यम से। ये कृष्ण के बचपन, किशोरावस्था और वयस्कता के नाटकीय कार्य हैं। एक आम दृश्य में कृष्ण को रासलीला में बांसुरी बजाते दिखाया जाता हैं, जो केवल कुछ गोपियों को सुनाई देती है तथा जो धर्मशास्त्रीय रूप से दिव्य वाणी का प्रतिनिधित्व करती है, जिसे मात्र कुछ प्रबुद्ध प्राणियों द्वारा सुना जा सकता है। कुछ पाठ की किंवदंतियों ने गीत गोविंद में प्रेम और त्याग जैसे माध्यमिक कला साहित्य को प्रेरित किया है।

भागवत पुराण जैसे कृष्ण-संबंधी साहित्य, प्रदर्शन के लिए इसके आध्यात्मिक महत्व को मानते हैं और उन्हें धार्मिक अनुष्ठान के रूप में मानते हैं तथा प्रतिदिन जीवन को आध्यात्मिक अर्थ के साथ जोड़ते हैं। इस प्रकार एक अच्छा, ईमानदार/सत्यनिष्ठ और सुखी जीवन व्यतीत करने का पथ प्रदर्शित करते

हैं। इसी तरह, कृष्ण द्वारा प्रेरित प्रदर्शन का उद्देश्य विश्वासयोग्य अभिनेताओं और श्रोताओं के हृदय को शुद्ध करना है। कृष्ण लीला के किसी भी हिस्से का गायन, नृत्य और प्रदर्शन, पाठ में धर्म को याद करने का एक कार्य है। यह पराभक्ति (सर्वोच्च भक्ति) के रूप में है। किसी भी समय और किसी भी कला में कृष्ण को याद करने के लिए, उनकी सुन्दर और दिव्य पूजा की जाती है।

विशेषकर कथक, ओडिसी, मणिपुरी,कुचीपुड़ी और भरतनाट्यम जैसी शास्त्रीय नृत्य शैलियां अपने कृष्ण-संबंधी प्रदर्शनों के लिए जानी जाती हैं। कृष्णाट्टम (कृष्णट्टम) ने अपने मूल को कृष्ण पौराणिक कथाओं के साथ रखा है और यह कथकली नामक एक अन्य प्रमुख शास्त्रीय भारतीय नृत्य रूप से जुड़ा हुआ है। ब्रायंट, भागवत पुराण में कृष्ण कहानियों के प्रभाव का सारांश देता है, 'संभवत: किसी भी अन्य पाठ की तुलना में संस्कृत साहित्य के इतिहास में,रामायण के अपवाद के साथ,इतने अधिक व्युत्पन्न साहित्य, कविता, नाटक, नृत्य, थियेटर और कला को प्रेरित नहीं किया।।

अन्य धर्म

जैन धर्म

जैन धर्म की परंपरा में 63 शलाकापुरुषों की सूची है, जिनमें चौबीस तीर्थंकर (आध्यात्मिक शिक्षक) और त्रिदेव के नौ समीकरण शामिल हैं। इनमें से एक समीकरण में कृष्ण को वासुदेव के रूप में, बलराम को बलदेव के रूप में और जरासंध को प्रति -वासुदेव के रूप में दर्शाया जाता है। जैन चक्रीय समय के प्रत्येक युग में बड़े भाई के साथ वासुदेव का जन्म हुआ है, जिसे बलदेव कहा जाता है। तीनों के बीच, बलदेव ने,जैन धर्म का एक केंद्रीय विचार, अहिंसा के सिद्धांत को बरकरार रखा है। खलनायक प्रति -वासुदेव है, जो विश्व को नष्ट करने का प्रयास करता है। विश्व को बचाने के लिए, वासुदेव-कृष्ण को अहिंसा सिद्धांत को त्यागना और प्रति -वासुदेव को मारना पड़ता है। इन तीनों की कहानियां, जिनसेना की हरिवंश पुराण (महाभारत के एक शीर्षक से भ्रमित हो)(8 वीं शताब्दी ईस्वी) में पढ़ी जा सकती है एवं हेमचंद्र की त्रिशक्ति-शलाकापुरुष -चरित में भी इनका उल्लेख है।

विमलसूरी को हरिवंश पुराण के जैन संस्करण का लेखक माना जाता है, लेकिन ऐसी कोई पांडुलिपि नहीं मिली है, जो इसकी पुष्टि करती है। यह

संभावना है कि बाद में जैन विद्वानों, शायद 8 वीं शताब्दी के जिनसेना ने, जैन परंपरा में कृष्ण किंवदंतियों का एक पूरा संस्करण लिखा और उन्हें प्राचीन विमलसूरी में जमा किया। कृष्ण की कहानी के आंशिक और पुराने संस्करण जैन साहित्य में उपलब्ध हैं, जैसे कि श्वेताम्बर अगम परंपरा के अंतर्गत दसाओं में ये वर्णित है।

अन्य जैन ग्रंथों में, कृष्ण को बाइसवें तीर्थंकर, नेमिनाथ के चचेरे भाई कहा जाता है। जैन ग्रंथों में कहा गया है कि नेमिनाथ ने कृष्ण को सर्व ज्ञान सिखाया था, जिसने बाद में भगवद् गीता में अर्जुन को दिया था। जेफरी डी लांग के अनुसार, कृष्ण और नेमिनाथ के बीच यह संबंध एक ऐसा ऐतिहासिक कारण है, जिस कारण जैनियों को भगवद् गीता को एक आध्यात्मिक रूप से महत्वपूर्ण पाठ के रूप में स्वीकार, पढ़ना और उद्धृत करना पड़ा तथा कृष्ण-संबंधित त्योहारों और हिंदूओं को आध्यात्मिक चचेरे भाई के रूप में स्वीकार करना पड़ा।

बौद्ध धर्म

कृष्ण की कहानी बौद्ध धर्म की जातक कहानियों में मिलती है। विदुरपंडित जातक में मधुरा (संस्कृत: मथुरा) का उल्लेख है, घट जातक में कंस, देवभग (देवकी), उपसागरा या वासुदेव, गोवधन (गोवर्धन), बलदेव (बलराम) और कान्हा या केसव (कृष्ण, केशव) का उल्लेख है।

सिख धर्म

कृष्ण के चौबीस अवतार में कृष्ण अवतार के रूप में वर्णित किया गया है, जो परंपरागत रूप से और ऐतिहासिक रूप से गुरु गोबिंद सिंह को समर्पित दशम ग्रंथ है।

बहाई पंथ

बहाई पंथिओं का मानना है कि कृष्ण 'ईश्वर के अवतार' या भविष्यद्वक्ताओं में से एक हैं, जिन्होंने धीरे-धीरे मानवता को परिपक्व बनाने हेतु भगवान की शिक्षा को प्रकट किया है। इस तरह, कृष्ण का स्थान इब्राहीम, मूसा, जोरोस्टर, बुद्ध, मुहम्मद,यीशु, बाब और बहाई विश्वास के संस्थापक बहाउल्लाह के साथ साझा करते हैं।।

अहमदिया

अहमदिया, एक आधुनिक युग का पंथ है, कृष्ण को उनके मान्य प्राचीन प्रवर्तकों में से एक माना जाता है। अहमदी खुद को मुसलमान मानते हैं, लेकिन वे मुख्यधारा के सुन्नी और शिया मुसलमानों द्वारा इस्लाम धर्म के रूप में खारिज करते हैं, जिन्होंने कृष्ण को अपने भविष्यद्वक्ता के रूप में मान्यता नहीं दी है।

गुलाम अहमद ने कहा कि वह स्वयं कृष्ण, यीशु और मुहम्मद जैसे भविष्यद्वक्ताओं की तरह एक भविष्यवक्ता थे, जो धरती पर धर्म और नैतिकता के उत्तरार्द्ध पुनरुद्धार के रूप में आए थे।

अन्य

कृष्ण की पूजा या सम्मान को 19 वीं शताब्दी के बाद से कई नए धार्मिक आंदोलनों द्वारा अपनाया गया है। उदाहरण के लिए, **एडवर्ड शूरे**, कृष्ण को एक महान प्रवर्तक मानते है, जबकि थियोसोफिस्ट कृष्ण को मैत्रेय (प्राचीन बुद्ध के गुरुओं में से एक) के अवतार के रूप में मानते हैं, जो बुद्ध के सबसे महत्वपूर्ण आध्यात्मिक गुरु है।

कृष्ण भक्ति काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएँ

भारतीय धर्म और संस्कृति के इतिहास में कृष्ण सदैव एक अद्‌भुत व विलक्षण व्यक्तित्त्व माने जाते रहे हैं। हमारे प्राचीन ग्रंथों में यत्र-तत्र कृष्ण का उल्लेख मिलता है, जिससे उनके जीवन के विभिन्न रूपों का पता चलता है।

यदि वैदिक व संस्कृत साहित्य के आधार पर देखा जाए तो कृष्ण के तीन रूप सामने आते है–

1. बाल व किशोर रूप, 2. क्षत्रिय नरेश, 3. ऋषि व धर्मोपदेशक।

श्रीकृष्ण विभिन्न रूपों में लौकिक और अलौकिक लीलाएं दिखाने वाले अवतारी पुरुष हैं। गीता, महाभारत व विविध पुराणों में उन्ही के इन विविध रूपों के दर्शन होते हैं।

कृष्ण महाभारत काल में ही अपने समाज में पूजनीय माने जाते थे। वे समय समय पर सलाह देकर धर्म और राजनीति का समान रूप से संचालन करते थे। लोगों में उनके प्रति श्रद्धा और आस्था का भाव था। कृष्ण भक्ति काव्य धारा के कवियों ने अपनी कविताओं में राधा-कृष्ण की लीलाओं को प्रमुख विषय

बनाकर वृहद् काव्य सृजन किया। इस काव्यधारा की प्रमुख विशेशतायें इस प्रकार है–

1. राम और कृष्ण की उपासना

1. समाज में अवतारवाद की भावना के फलस्वरूप राम और कृष्ण दोनों के ही रूपों का पूजन किया गया।
2. दोनों को ही पूर्ण ब्रह्म का प्रतीक मानकर, आदर्श मानव के रूप में प्रस्तुत किया गया।
3. किंतु जहाँ राम मर्यादा पुरषोत्तम के रूप में सामने आते हैं, वहीं कृष्ण एक सामान्य परिवार में जन्म लेकर सामंती अत्याचारों का विरोध करते हैं। वे जीवन में अधिकार और कर्तव्य के सुंदर मेल का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।
4. वे जिस तन्मयता से गोपियों के साथ रास रचाते हैं, उसी तत्परता से राजनीति का संचालन करते हैं या फिर महाभारत के युद्ध भूमि में गीता उपदेश देते हैं।
5. इस प्रकार से राम व कृष्ण ने अपनी-अपनी चारित्रिक विशेषताओं द्वारा भक्तों के मानस को आंदोलित किया।

2. राधा-कृष्ण की लीलाएं

1. कृष्ण-भक्ति काव्य धारा के कवियों ने अपनी कविताओं में राधा-कृष्ण की लीलाओं को प्रमुख विषय बनाया।
2. श्रीमदभागवत में कृष्ण के लोकरंजक रूप को प्रस्तुत किया गया था।
3. भागवत के कृष्ण स्वयं गोपियों से निर्लिप्त रहते हैं।
4. गोपियाँ बार-बार प्रार्थना करती हैं, तभी वे प्रकट होते हैं, जबकि हिन्दी कवियों के कान्हा एक रसिक छैला बनकर गोपियों का दिल जीत लेते है।
5. सूरदास जी ने राधा-कृष्ण के अनेक प्रसंगों का चित्रण कर उन्हें एक सजीव व्यक्तित्त्व प्रदान किया है।
6. हिन्दी कवियों ने कृष्ण ले चरित्र को नाना रूप रंग प्रदान किये हैं, जो काफी लीलामयी व मधुर जान पड़ते हैं।

3. वात्सल्य रस का चित्रण

पुष्टिमार्ग प्रारंभ हुआ तो बाल कृष्ण की उपासना का ही चलन था। अतः कवियों ने कृष्ण के बाल रूप को पहले पहले चित्रित किया।

यदि वात्सल्य रस का नाम लें तो सबसे पहले सूरदास का नाम आता है, जिन्हें आप इस विषय का विशेषज्ञ कह सकते हैं। उन्होंने कान्हा के बचपन की सूक्ष्म से सूक्ष्म गतिविधियाँ भी ऐसी चित्रित की है, मानो वे स्वयं वहाँ उपस्थित हों।

मैया कबहूँ बढ़ेगी चोटि ?
किति बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।

सूर का वात्सल्य केवल वर्णन मात्र नहीं है, जिन-जिन स्थानों पर वात्सल्य भाव प्रकट हो सकता था, उन सब घटनाओं को आधार बनाकर काव्य रचना की गयी है। माँ यशोदा अपने शिशु को पालने में सुला रही हैं और निंदिया से विनती करती हैं कि वह जल्दी से उनके लाल की अंखियों में आ जाए।

जसोदा हरी पालनै झुलावै।
हलरावै दुलराय मल्हरावै जोई सोई कछु गावै।
मेरे लाल कौ आउ निंदरिया, काहै मात्र आनि सुलावै।
तू काहे न बेगहि आवे, तो का कान्ह बुलावें।

कृष्ण का शैशव रूप घटने लगता है तो माँ की अभिलाषाएं भी बढ़ने लगती हैं। उसे लगता है की कब उसका शिशु उसका आँचल पकड़कर डोलेगा। कब, उसे माँ और अपने पिता को पिता कहके पुकारेगा, वह लिखते है–

जसुमति मन अभिलाष करै,
कब मेरो लाल घुतरुवनी रेंगै, कब घरनी पग द्वैक भरे,
कब वन्दहिं बाबा बोलौ, कब जननी काही मोहि ररै,
रब घौं तनक-तनक कछु खैहे, अपने कर सों मुखहिं भरे
कब हसि बात कहेगौ मौ सौं, जा छवि तै दुख दूरि हरै।

सूरदास ने वात्सल्य में संयोग पक्ष के साथ-साथ वियोग का भी सुंदर वर्णन किया है। जब कंस का बुलावा लेकर अक्रूर आते हैं तो कृष्ण व बलराम को मथुरा जाना पड़ता है। इस अवसर पर सूरदास ने वियोग का मर्मस्पर्सी

चित्र प्रस्तुत किया है। यशोदा बार-बार विनती करती हैं कि कोई उनके गोपाल को जाने से रोक ले।

जसोदा बार बार यों भारवै
है ब्रज में हितू हमारौ, चलत गोपालहिं राखै

जब उधौ कान्हा का संदेश लेकर आते हैं, तो माँ यशोदा का हृदय अपने पुत्र के वियोग में रो देता है, वह देवकी को संदेश भिजवाती हैं।

संदेस देवकी सों कहियो।
हों तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो।।
उबटन तेल तातो जल देखत ही भजि जाने
जोई-चोर मांगत सोइ-सोइ देती करम-करम कर न्हाते।
तुम तो टेक जानतिही धै है ताऊ मोहि कहि आवै।
प्रातः उठत मेरे लाड लडैतहि माखन रोटी भावै।

4. शृंगार का वर्णन

कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण व गोपियों के प्रेम वर्णन के रूप में पूरी स्वछंदता से शृंगार रस का वर्णन किया है। कृष्ण व गोपियों का प्रेम धीरे-धीरे विकसित होता है। कृष्ण, राधा व गोपियों के बीच अक्सर छेड़छाड़ चलती रहती है–

तुम पै कौन दुहावै गैया
इत चितवन उन धार चलावत, यहै सिखायो मैया।
सूर कहा ए हमको जातै छाछहि बेचनहारि।

कवि विद्यापति ने कृष्ण के भक्त-वत्सल रूप को छोड़ कर शृंगारिक नायक वाला रूप ही चित्रित किया है।

विद्यापति की राधा भी एक प्रवीण नायिका की तरह कहीं मुग्धा बनती है, तो कभी कहीं अभिसारिका। विद्यापति के राधा-कृष्ण यौवनावस्था में ही मिलते है और उनमे प्यार पनपने लगता है।

प्रेमी नायक, प्रेमिका को पहली बार देखता है तो रमनी की रूप पर मुग्ध हो जाता है।

सजनी भलकाए पेखन न मेल
मेघ-माल सयं तड़ित लता जनि
हिरदय सेक्ष दई गेल।

हे सखी ! मैं तो अच्छी तरह उस सुन्दरी को देख नहीं सका क्योंकि जिस प्रकार बादलों की पंक्ति में एका एक

बिजली चमक कर चमक जाती है, उसी प्रकार प्रिया के सुंदर शरीर की चमक मेरे हृदय में भाले की तरह उतर गयी और मैं उसकी पीडा झेल रहा हूँ। विद्यापति की राधा अभिसार के लिए निकलती है तो सांप पाँव में लिप्त जाता है। वह इसमें भी अपना भला मानती है, कम से कम पाँव में पड़े नूपुरों की आवाज तो बंद हो गयी। इसी प्रकार विद्यापति वियोग में भी वर्णन करते हैं। कृष्ण के विरह में राधा की आकुलता, विवशता, दैन्य व निराशा आदि का मार्मिक चित्रण हुआ है।

सजनी, के कहक आओव मधाई।
विरह-पयोचि पार किए पाऊव, मझुम नहिं पति आई।
एखत तखन करि दिवस गमाओल, दिवस दिवस करि मासा।
मास-मास करि बरस गमाओल, छोड़ लूँ जीवन आसा।
बरस-बरस कर समय गमाओल, खोल लूं कानुक आसे।
हिमकर-किरन नलिनी जदि जारन, कि कर्ण माधव मासे।

इस प्रकार कृष्ण भक्त कवियों ने प्रेम की सभी अवस्थाओं व भाव-दशाओं का सफलतापूर्वक चित्रण किया है।

5. भक्ति भावना

यदि भक्त-भावना के विषय में बात करें तो कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास, कुम्भनदास व मीरा का नाम उल्लेखनीय है।

सूरदासजी ने वल्लभाचार्य जी से दीक्षा ग्रहण कर लेने के पूर्व प्रथम रूप में भक्ति-भावना की व्यंजना की है।

नाथ जू अब कै मोहि उबारो
पतित में विख्यात पतित हौं पावन नाम विहारो॥

सूर के भक्ति काव्य में अलौकिकता और लौकिकता, रागात्मकता और बौद्धिकता, माधुर्य और वात्सल्य सब मिलकर एकाकार हो गए हैं।

भगवान् कृष्ण के अनन्य भक्त होने के नाते उनके मन से से सच्चे भाव निकलते हैं। उन्होंने ही भ्रमरनी परम्परा को नए रूप में प्रस्तुत किया। भक्त-शिरोमणि सूर ने इसमें सगुणोपासना का चित्रण, हृदय की अनुभूति के आधार पर किया है। अंत में गोपियों अपनी आस्था के बल पर निर्गुण की उपासना का खंडन कर देती हैं।

उधौ मन नाहिं भए दस-बीस
एक हुतो सो गयो श्याम संग
को आराधै ईश।

मीराबाई कृष्ण को अपने प्रेमी ही नहीं, अपितु पति के रूप में भी स्मरण करती है। वे मानती हैं कि वे जन्म-जन्म से ही कृष्ण की प्रेयसी व पत्नी रही हैं। वे प्रिय के प्रति आत्म-निवेदन व उपालंभ के रूप में प्रणय-वेदना की अभिव्यक्ति करती हैं।

देखो सईयां हरि मन काठ कियो
आवन कह गयो अजहूं न आयो, करि करि गयो
खान-पान सुध-बुध सब बिसरी कैसे करि मैं जियो
वचन तुम्हार तुमहीं बिसरै, मन मेरों हर लियो
मीरां कहे प्रभु गिरधर नागर, तुम बिन फारत हियो।

भक्ति काव्य के क्षेत्र में मीरा सगुण-निर्गुण, श्रद्धा व प्रेम, भक्ति व रहस्यवाद के अन्तर को भरते हुए, माधुर्य भाव को अपनाती हैं। उन्हें तो अपने सांवरियां का ध्यान कराने में, उनको हृदय की रागिनी सुनाने व उनके सम्मुख नृत्य करने में ही आनंद आता है।

आली रे मेरे नैणां बाण पड़ीं।
चित चढ़ी मेरे माधुरी मुरल उर बिच आन अड़ी।
कब की ठाढ़ी पंछ निहारूं अपने भवन खड़ी।

6. ब्रज भाषा व अन्य भाषाओं का प्रयोग

अनेक कवियों ने नि:संकोच कृष्ण की जन्मभूमि में प्रचलित ब्रज भाषा को ही अपने काव्य में प्रयुक्त किया। सूरदास व नंददास जैसे कवियों ने भाषा के रूप को इतना निखार दिया कि कुछ समय बाद यह समस्त उत्तरी भारत की साहित्यिक भाषा बन गई।

यद्यपि ब्रज भाषा के अतिरिक्त कवियों ने अपनी-अपनी मातृ भाषाओं में कृष्ण काव्य की रचना की। विद्यापति ने मैथिली भाषा में अनेक भाव प्रकट किए।

सप्ति हे कतहु न देखि मधाई
कांप शरीर धीन नहि मानस, अवधि निअर मेल आई
माधव मास तिथि भयो माधव अवधि कहए पिआ गेल।
मीरा ने राजस्थानी भाषा में अपने भाव प्रकट किए।
रमैया बिन नींद न आवै
नींद न आवै विरह सतावै, प्रेम की आंच हुलावै।

2

भक्तिकाल के कवि

भक्तिकाल में कृष्णभक्ति शाखा के अंतर्गत आने वाले प्रमुख कवि हैं–कबीरदास, संत शिरोमणि रविदास,तुलसीदास, सूरदास, नंददास, कृष्णदास, परमानंद दास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, हितहरिवंश, गदाधर भट्ट, मीराबाई, स्वामी हरिदास, सूरदास मदनमोहन, श्रीभट्ट, व्यास जी, रसखान, ध्रुवदास तथा चैतन्य महाप्रभु।

सूरदास

हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ कृष्णभक्त कवि सूरदास का जन्म 1483 ई. के आस-पास हुआ था। इनकी मृत्यु अनुमानतः 1563 ई. के आस-पास हुई। इनके बारे में 'भक्तमाल' और 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में थोड़ी-बहुत जानकारी मिल जाती है। 'आईने अकबरी' और 'मुंशियात अब्बुलफजल' में भी किसी संत सूरदास का उल्लेख है, किन्तु वे बनारक के कोई और सूरदास प्रतीत होते हैं। अनुश्रुति यह अवश्य है कि अकबर बादशाह सूरदास का यश सुनकर उनसे मिलने आए थे। 'भक्तमाल' में इनकी भक्ति, कविता एवं गुणों की प्रशंसा है तथा इनकी अंधता का उल्लेख है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार वे आगरा और मथुरा के बीच साधु या स्वामी के रूप में रहते थे। वे वल्लभाचार्य के दर्शन को गए और उनसे लीलागान का उपदेश पाकर कृष्ण-चरित विषयक पदों की

रचना करने लगे। कालांतर में श्रीनाथ जी के मंदिर का निर्माण होने पर महाप्रभु वल्लभाचार्य ने इन्हें यहाँ कीर्तन का कार्य सौंपा। सूरदास के विषय में कहा जाता है कि वे जन्मांध थे। उन्होंने अपने को 'जन्म को आँधर' कहा भी है। किन्तु इसके शब्दार्थ पर अधिक नहीं जाना चाहिए। सूर के काव्य में प्रकृतियाँ और जीवन का जो सूक्ष्म सौन्दर्य चित्रित है, उससे यह नहीं लगता कि वे जन्मांध थे। उनके विषय में ऐसी कहानी भी मिलती है कि तीव्र अंतद्वंन्द्व के किसी क्षण में उन्होंने अपनी आँखें फोड़ ली थीं। उचित यही मालूम पड़ता है कि वे जन्मांध नहीं थे। कालांतर में अपनी आँखों की ज्योति खो बैठे थे। सूरदास अब अंधों को कहते हैं। यह परम्परा सूर के अंधे होने से चली है। सूर का आशय 'शूर' से है। शूर और सती मध्यकालीन भक्त साधकों के आदर्श थे।

कृतियाँ

1. सूरसागर,
2. सूरसारावली,
3. साहित्य लहरी।

संत शिरोमणि रविदास

रैदास नाम से विख्यात संत रविदास का जन्म सन् 1388 (इनका जन्म कुछ विद्वान 1398 में हुआ भी बताते हैं) को बनारस में हुआ था। रैदास कबीर के समकालीन हैं। रैदास की ख्याति से प्रभावित होकर सिकंदर लोदी ने इन्हें दिल्ली आने का निमंत्रण भेजा था।

मध्ययुगीन साधकों में रैदास का विशिष्ट स्थान है। कबीर की तरह रैदास भी संत कोटि के प्रमुख कवियों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। कबीर ने 'संतन में रविदास' कहकर इन्हें मान्यता दी है।

मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा जैसे दिखावों में रैदास का बिल्कुल भी विश्वास न था। वह व्यक्ति की आंतरिक भावनाओं और आपसी भाईचारे को ही सच्चा धर्म मानते थे। रैदास ने अपनी काव्य-रचनाओं में सरल, व्यावहारिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया है, जिसमें अवधी, राजस्थानी, खड़ी बोली और उर्दू-फारसी के शब्दों का भी मिश्रण है। रैदास को उपमा और रूपक अलंकार विशेष प्रिय रहे हैं। सीधे-सादे पदों में संत कवि ने हृदय के भाव बड़ी सफाई से प्रकट किए हैं। इनका आत्मनिवेदन, दैन्य भाव और सहज भक्ति पाठक के हृदय को उद्वेलित

करते हैं। रैदास के चालीस पद सिखों के पवित्र धर्मग्रंथ 'गुरुग्रंथ साहब' में भी सम्मिलित हैं। कहते हैं मीरा के गुरु रैदास ही थे।

रविदास जी के पद

अब कैसे छूटे राम रट लागी। प्रभु जी, तुम चंदन हम पानी, जाकी अँग-अँग बास समानी, प्रभु जी, तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा, प्रभु जी, तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राती, प्रभु जी, तुम मोती, हम धागा जैसे सोनहिं मिलत सोहागा, प्रभु जी, तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै 'रैदासा'।

रैदास के दोहे (काव्य)

जाति-जाति में जाति हैं, जो केतन के पात।
रैदास मनुष ना जुड़ सके,
जब तक जाति न जात।।
रैदास कनक और कंगन माहि, जिमि अंतर कछु नाहिं।
तैसे ही अंतर नहीं हिन्दुअन तुरकन माहि।।
हिंदू तुरक नहीं कछु भेदा सभी मह एक रक्त और मासा।
दोऊ एकऊ दूजा नाहीं, पेख्यो सोइ रैदासा।।
कह रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सो पावै।
तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलक हवै चुनि खावै।।
कृस्न, करीम, राम, हरि, राघव, जब लग एक न पेखा।
वेद कतेब कुरान, पुरानन, सहज एक नहिं देखा।।

ध्रुवदास

ये श्री हितहरिवंश के शिष्य स्वप्न में हुए थे। इसके अतिरिक्त उनका कुछ जीवनवृत्त प्राप्त नहीं हुआ। वे अधिकतर वृंदावन में ही रहा करते थे। उनकी रचना बहुत ही विस्तृत है और इन्होंने पदों के अतिरिक्त दोह, चौपाई, कवित्त, सवैये आदि अनेक छंदों में भक्ति और प्रेमतत्त्वों का वर्णन किया है।

कृतियाँ

1. वृंदावनसत,
2. सिंगारसत,

3. रसरत्नावली,
4. नेहमंजरी,
5. रहस्यमंजरी।

रसखान

ये दिल्ली के एक पठान सरदार थे। ये लौकिक प्रेम से कृष्ण प्रेम की ओर उन्मुख हुए. ये गोस्वामी विट्ठलनाथ के बड़े कृपापात्र शिष्य थे। रसखान ने कृष्ण का लीलागान गेयपदों में नहीं, सवैयों में किया है। रसखान को सवैया छंद सिद्ध था। जितने सहज, सरस, प्रवाहमय सवैये रसखान के हैं, उतने शायद ही किसी अन्य कवि के हों। रसखान का कोई ऐसा सवैया नहीं मिलता जो उच्च स्तर का न हो। उनके सवैये की मार्मिकता का बहुत बड़ा आधार दृश्यों और बाह्यांतर स्थितियों की योजना में है। वही योजना रसखान के सवैयों के ध्वनि-प्रवाह में है। ब्रजभाषा का ऐसा सहज प्रवाह अन्यत्र बहुत कम मिलता है। रसखान सूफियों का हृदय लेकर कृष्ण की लीला पर काव्य रचते हैं। उनमें उल्लास, मादकता और उत्कटता तीनों का संयोग है। ब्रज भूमि के प्रति जो मोह रसखान की कविताओं में दिखाई पड़ता है, वह उनकी विशेषता है।

कृतियाँ

1. प्रेमवाटिका,
2. सुजान रसखान।

व्यास जी

इनका पूरा नाम हरीराम व्यास था और वे ओरछा के रहनेवाले थे। ओरछानरेश मधुकर शाह के ये राजगुरू थे। पहले ये गौड़ सम्प्रदाय के वैष्णव थे पीछे हितहरिवंशजी के शिष्य होकर राधाबल्लभी हो गए। इनका समय सन् 1563 ई. के आसपास है। इनकी रचना परिमाण में भी बहुत विस्तृत है और विषय भेद के विचार से भी अधिकांश कृष्णभक्तों की अपेक्षा व्यापक है। ये श्रीकृष्ण की बाललीला और शृंगारलीला में लीन रहने पर भी बीच में संसार पर दृष्टि डाला करते थे। इन्होंने तुलसीदास के समान खलों, पाखंडियों आदि का भी स्मरण किया और रसखान के अतिरिक्त तत्त्वनिरूपण में भी ये प्रवृत्त हुए हैं।

कृतियाँ

1. रासपंचाध्यायी

स्वामी हरिदास

ये महात्मा वृंदावन में निंबार्क मतांतर्गत टट्टी संप्रदाय, जिसे सुसू संप्रदाय भी कहते है, के संस्थापक थे और अकबर के समय में एक सिद्ध भक्त और संगीत-कला-कोविद माने जाते थे। इनका कविताकाल सन् 1543 से 1560 ई. ठहरता है। प्रसिद्ध गायनाचार्य तानसेन इनका गुरूवत् सम्मान करते थे। यह प्रसिद्ध है कि अकबर बादशाह साधु के वेश में तानसेन के साथ इनका गाना सुनने के लिए गया था। कहते हैं कि तानसेन इनके सामने गाने लगे और उन्होंने जानबूझकर गाने में कुछ भूल कर दी। इसपर स्वामी हरिदास ने उसी गाना को शुद्ध करके गाया। इस युक्ति से अकबर को इनका गाना सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। पीछे अकबर ने बहुत कुछ पूजा चढ़ानी चाही पर इन्होंने स्वीकृन न की। इनका जन्म समय कुछ ज्ञात नहीं है।

कृतियाँ

1. स्वामी हरिदास जी के पद,
2. हरिदास जी की बानी।

मीराबाई

ये मेड़तिया के राठौड़ रत्नसिंह की पुत्री, राव दूदाजी की पौत्री और जोधपुर के बसानेवाले प्रसिद्ध राव जोधा की प्रपौत्री थीं। इनका जन्म सन् 1516 ई. में चोकड़ी नाम के एक गाँव में हुआ था और विवाह उदयपुर के महाराणा कुमार भोजराज के साथ हुआ था। ये आरंभ से ही कृष्ण भक्ति में लीन रहा करती थी। विवाह के उपरांत थोड़े दिनों में इनके पति का परलोकवास हो गया। ये प्राय: मंदिर में जाकर उपस्थित भक्तों और संतों के बीच श्रीकृष्ण भगवान की मूर्त्ति के सामने आनंदमग्न होकर नाचती और गाती थी। कहते हैं कि इनके इस राजकुलविरुद्ध आचरण से इनके स्वजन लोकनिंदा के भय से रुष्ट रहा करते थे। यहाँ तक कहा जाता है कि इन्हें कई बार विष देने का प्रयत्न किया गया, पर विष का कोई प्रभाव इन पर न हुआ। घरवालों के व्यवहार से खिन्न होकर ये द्वारका और वृंदावन के मंदिरों में घूम-घूमकर भजन सुनाया करती थीं। ऐसा

प्रसिद्ध है कि घरवालों से तंग आकर इन्होंने गोस्वामी तुलसीदास को यह पद लिखकर भेजा था–स्वस्ति श्री तुलसी कुल भूषन दूषन हरन गोसाई।

"बारहिं बार प्रनाम करहुँ, अब हरहु सोक समुदाई"
"घर के स्वजन हमारे जेते सबन्ह उपाधि बढ़ाई"
"साधु संग अरू भजन करत मोहिं देत कलेस महाई"
"मेरे मात पिता के सम हौ, हरिभक्तन्ह सुखदाई"
"हमको कहा उचित करिबो है, सो लिखिए समझाई"

"इस पर गोस्वामी जी ने 'विनयपत्रिका' का यह पद लिखकर भेजा था–

जाके प्रिय न राम बैदेही सो नर तजिय कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही
नाते सबै राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं
अंजन कहा आँखि जौ फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं

मीराबाई की मृत्यु द्वारका में सन् 1546 ई. में हो चुकी थी। अतः यह जनश्रुति किसी की कल्पना के आधार पर ही चल पड़ी। मीराबाई का नाम प्रधान भक्तों में है और इनका गुणगान नाभाजी, ध्रुवदास, व्यास जी, मलूकदास आदि सब भक्तों ने किया है।

कृतियाँ

1. नरसी जी का मायरा,
2. गीतगोविंद टीका,
3. राग गोविंद,
4. राग सोरठ के पद।

गदाधर भट्ट

ये दक्षिणी ब्राह्मण थे। इनके जन्म का समय ठीक से पता नहीं, पर यह बात प्रसिद्ध है कि ये श्री चैतन्य महाप्रभु को भागवत सुनाया करते थे। इनका समर्थन भक्तमाल की इन पंक्तियों से भी होता है–

भागवत सुधा बरखै बदन, काहू को नाहिंन दुखद।
गुणनिकर गदाधर भट्ट अति सबहिन को लागै सुखद॥

संस्कृत के चूडांत पंडित होने के कारण शब्दों पर इनका बहुत विस्तृत अधिकार था। इनका पदविन्यास बहुत ही सुंदर है।

हितहरिवंश

राधावल्लभी सम्प्रदाय के प्रवर्तक गोसाईं हितहरिवंश का जन्म सन् 1502 ई. में मथुरा से 4 मील दक्षिण बादगाँव में हुआ था। राधावल्लभी सम्प्रदाय के पंडित गोपालप्रसाद शर्मा ने इनका जन्म सन् 1473 ई. माना है। इनके पिता को नाम केशवदास मिश्र और माता का नाम तारावती था। कहते हैं कि हितहरिवंश पहले माध्वानुयायी गोपाल भट्ट के शिष्य थे। पीछे इन्हें स्वप्न में राधिकाजी ने मंत्र दिया और इन्होंने अपना एक अलग संप्रदाय चलाया। अत: हित सम्प्रदाय को माध्व संप्रदाय के अंतर्गत मान सकते हैं। हितहरिवंश के चार पुत्र और एक कन्या हुई। गोसाईं जी ने सन् 1525 ई. में श्री राधावल्लभ जी की मूर्त्ति वृंदावन में स्थापित की और वहीं विरक्त भाव से रहने लगे। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान और भाषा काव्य के अच्छे मर्मज्ञ थे। ब्रजभाषा की रचना इनकी यद्यपि बहुत विस्तृत नहीं है तथापि बड़ी सरस और हृदयग्राहिणी है।

कृतियाँ

1. राधासुधानिधि,
2. हित चौरासी।

गोविन्दस्वामी

ये अंतरी के रहनेवाले सनाढ्य ब्राह्मण थे जो विरक्त की भाँति आकर महावन में रहने लगे थे। पीछे गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य हुए जिन्होंने इनके रचे पदों से प्रसन्न होकर इन्हें अष्टछाप में लिया। ये गोवर्धन पर्वत पर रहते थे और उसके पास ही इन्होंने कदंबों का एक अच्छा उपवन लगाया था जो अब तक 'गोविन्दस्वमी की कदंबखडी' कहलाता है। इनका रचनाकाल सन् 1543 और 1568 ई. के भीतर ही माना जा सकता है। वे कवि होने के अतिरिक्त बड़े पक्के गवैये थे। तानसेन कभी-कभी इनका गाना सुनने के लिए आया करते थे।

छीतस्वामी

विट्ठलनाथ जी के शिष्य और अष्टछाप के अंतर्गत थे। पहले ये मथुरा के सुसम्पन्न पंडा थे और राजा बीरबल जैसे लोग इनके जजमान थे। पंडा होने के कारण ये पहले बड़े अक्खड़ और उद्दंड थे, पीछे गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से दीक्षा लेकर परम शांत भक्त हो गए और श्रीकृष्ण का गुणानुवाद करने लगे।

इनकी रचनाओं का समय सन् 1555 ई. के इधर मान सकते हैं। इनके पदों मेंशृंगार के अतिरिक्त ब्रजभूमि के प्रति प्रेमव्यंजना भी अच्छी पाई जाती है। 'हे विधना तोसों अँचरा पसारि माँगौ जनम जनम दीजो याही ब्रज बसिबो' पद इन्हीं का है।

चतुर्भुजदास

ये कुंभनदास जी के पुत्र और गोसाईं विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। ये भी अष्टछाप के कवियों में हैं। इनकी भाषा चलती और सुव्यवस्थित है। इनके बनाए तीन ग्रंथ मिले हैं।

कृतियाँ

1. द्वादशयश,
2. भक्तिप्रताप,
3. हितजू को मंगल।

कुंभनदास

ये भी अष्टछाप के एक कवि थे और परमानंद जी के ही समकालीन थे। ये पूरे विरक्त और धन, मान, मर्यादा की इच्छा से कोसों दूर थे। एक बार अकबर बादशाह के बुलाने पर इन्हें फतहपुर सीकरी जाना पड़ा, जहाँ इनका बड़ा सम्मान हुआ। पर इसका इन्हें बराबर खेद ही रहा, जैसा कि इस पद से व्यंजित होता है–संतन को कहा सीकरी सो काम ? आवत जात पनहियाँ टूटी, बिसरि गयो हरि नाम जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिबे परी सलाम कुंभनदास लाल गिरिधर बिनु और सबै बेकाम। इनका कोई ग्रंथ न तो प्रसिद्ध है और न अब तक मिला है।

परमानंद

यह वल्लभाचार्य जी के शिष्य और अष्टछाप में थे। सन् 1551 ई. के आसपास वर्तमान थे। इनका निवास स्थान कन्नौज था। इसी से ये कान्यकुब्ज अनुमान किए जाते हैं। अत्यंत तन्मयता के साथ बड़ा ही सरल कविता करते थे। कहते हैं कि इनके किसी एक पद को सुनकर आचार्यजी कई दिनों तक बदन की सुध भूले रहे। इनके फुटकर पद कृष्णभक्तों के मुँह से प्रायः सुनने में आते थे।

कृतियाँ

1. परमानंदसागर

कृष्णदास

जन्मना शूद्र होते हुए भी वल्लभाचार्य के कृपा-पात्र थे और मंदिर के प्रधान हो गए थे। 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' के अनुसार एक बार गोसाईं विट्ठलनाथजी से किसी बात पर अप्रसन्न होकर इन्होंने उनकी ड्योढ़ी बंद कर दी। इस पर गोसाईं के कृपापात्र महाराज बीरबल ने इन्हें कैद कर लिया। पीछे गोसाईं जी इस बात से बड़े दुखी हुए और उनको कारागार से मुक्त कराके प्रधान के पद पर फिर ज्यों का त्यों प्रतिष्ठित कर दिया। इन्होंने भी और सब कृष्ण भक्तों के समान राधाकृष्ण के प्रेम को लेकर श्रृंगार रस के ही पद गाए हैं। 'जुगलमान चरित' नामक इनका एक छोटा सा ग्रंथ मिलता है। इसके अतिरिक्त इनके बनाए दो ग्रंथ और कहे जाते हैं-भ्रमरगीत और प्रेमतत्त्व निरूपण. इनका कविताकाल सन् 1550 के आगे पीछे माना जाता है।

कृतियाँ

1. जुगलमान चरित,
2. भ्रमरगीत,
3. प्रेमतत्त्व निरूपण।

श्रीभट्ट

ये निंबार्क सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान केशव काश्मीरी के प्रधान शिष्य थे। इनका जन्म सन् 1538 ई. में अनुमान किया जाता है। इनकी कविता सीधी-सादी और चलती भाषा में हैं। पद भी प्रायः छोटे-छोटे हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि जब ये तन्मय होकर अपने पद गाने लगते थे तब कभी-कभी उस पद के ध्यानानुरूप इन्हें भगवान की झलक प्रत्यक्ष मिल जाती थी।

कृतियाँ

1. युगल शतक,
2. आदि बानी।

सूरदास मदनमोहन

ये अकबर के समय में संडीले के अमीन थे। ये जो कुछ पास में आता प्रायः साधुओं की सेवा में लगा दिया करते थे। कहते हैं कि एक बार संडीले तहसील की मालगुजारी के कई लाख रुपये सरकारी खजाने में आए थे। इन्होंने सब का सब साधुओं को खिला-पिला दिया और शाही खजाने में कंकड़-पत्थरों से भरे संदूक भेज दिए, जिनके भीतर कागज के चिट यह लिख कर रख दिए।

तेरह लाख सँडीले आए, सब साधुन मिलि गटके।
सूरदास मदनमोहन आधी रातहिं सटके॥
और आधी रात को उठकर कहीं भाग गए।

बादशाह ने इनका अपराध क्षमा करके इन्हें फिर बुलाया, पर ये विरक्त होकर वृंदावन में रहने लगे। इनकी कविता इतनी सरस होती थी कि इनके बनाए बहुत से पद सूरसागर में मिल गए। इनकी कोई पुस्तक प्रसिद्ध नहीं। इनका रचनाकाल सन् 1533 ई. और 1543 ई. के बीच अनुमान किया जाता है।

नंददास

नंददास 16 वीं शती के अंतिम चरण में विद्यमान थे। इनके विषय में 'भक्तमाल' में लिखा है–'चन्द्रहास-अग्रज सुहृद परम प्रेम में पगे' इससे इतना ही सूचित होता है कि इनके भाई का नाम चंद्रहास था। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार ये तुलसीदास के भाई थे, किन्तु अब यह बात प्रामाणिक नहीं मानी जाती. उसी वार्ता में यह भी लिखा है कि द्वारका जाते हुए नंददास सिंधुनद ग्राम में एक रूपवती खत्रनी पर आसक्त हो गए। ये उस स्त्री के घर में चारो ओर चक्कर लगाया करते थे। घरवाले हैरान होकर कुछ दिनों के लिए गोकुल चले गए। वहाँ भी वे जा पहुँचे। अंत में वहीं पर गोसाईं विट्ठलनाथ जी के सदुपदेश से इनका मोह छूटा और ये अनन्य भक्त हो गए। इस कथा में ऐतिहासिक तथ्य केवल इतना ही है कि इन्होंने गोसाईं विट्ठलनाथ जी से दीक्षा ली। इनके काव्य के विषय में यह उक्ति प्रसिद्ध है–'और कवि गढ़िया, नंददास जड़िया' इससे प्रकट होता है कि इनके काव्य का कला-पक्ष महत्त्वपूर्ण है। इनकी रचना बड़ी सरस और मधुर है। इनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'रासपंचाध्यायी' है, जो रोला छंदों में लिखी गई है। इसमें जैसा कि

नाम से ही प्रकट है, कृष्ण की रासलीला का अनुप्रासादियुक्त साहित्यिक भाषा में विस्तार के साथ वर्णन है।

कृतियाँ

पद्य रचना

1. रासपंचाध्यायी,
2. भागवत दशम स्कंध,
3. रूक्मिणीमंगल,
4. सिद्धांत पंचाध्यायी,
5. रूपमंजरी,
6. मानमंजरी,
7. विरहमंजरी,
8. नामचिंतामणिमाला,
9. अनेकार्थनाममाला,
10. दानलीला,
11. मानलीला,
12. अनेकार्थमंजरी,
13. ज्ञानमंजरी,
14. श्यामसगाई,
15. भ्रमरगीत,
16. सुदामाचरित्र,
17. गद्यरचना,
18. हितोपदेश,
19. नासिकेतपुराण,

चैतन्य महाप्रभु

चैतन्य महाप्रभु भक्तिकाल के प्रमुख कवियों में से एक हैं। इन्होंने वैष्णवों के गौड़ीय संप्रदाय की आधारशिला रखी। भजन गायकी की एक नयी शैली को जन्म दिया तथा राजनैतिक अस्थिरता के दिनों में हिंदू मुस्लिम एकता की

सद्भावना को बल दिया, जाति-पांत, ऊँच-नीच की भावना को दूर करने की शिक्षा दी तथा विलुप्त वृंदावन को फिर से बसाया और अपने जीवन का अंतिम भाग वहीं व्यतीत किया।

चैतन्य महाप्रभु का जन्म सन 1486 की फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को पश्चिम बंगाल के नवद्वीप (नादिया) नामक उस गांव में हुआ, जिसे अब मायापुर कहा जाता है। यपि बाल्यावस्था में इनका नाम विश्वंभर था, परंतु सभी इन्हें निमाई कहकर पुकारते थे। गौरवर्ण का होने के कारण लोग इन्हें गौरांग, गौर हरि, गौर सुंदर आदि भी कहते थे। चैतन्य महाप्रभु के द्वारा गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय की आधारशिला रखी गई। उनके द्वारा प्रारंभ किए गए महामंत्र नाम संकीर्तन का अत्यंत व्यापक व सकारात्मक प्रभाव आज पश्चिमी जगत तक में है। इनके पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र व मां का नाम शचि देवी था। निमाई बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा संपन्न थे। साथ ही, अत्यंत सरल, सुंदर व भावुक भी थे। इनके द्वारा की गई लीलाओं को देखकर हर कोई हतप्रभ हो जाता था। बहुत कम उम्र में ही निमाई न्याय व व्याकरण में पारंगत हो गए थे। इन्होंने कुछ समय तक नादिया में विघालय स्थापित करके अध्यापन कार्य भी किया। निमाई बाल्यावस्था से ही भगवद्चिंतन में लीन रहकर राम व कृष्ण का स्तुति गान करने लगे थे। 15-16 वर्ष की अवस्था में इनका विवाह लक्ष्मीप्रिया के साथ हुआ। सन 1505 में सर्प दंश से पत्नी की मृत्यु हो गई। वंश चलाने की विवशता के कारण इनका दूसरा विवाह नवद्वीप के राजपंडित सनातन की पुत्री विष्णुप्रिया के साथ हुआ। जब ये किशोरावस्था में थे, तभी इनके पिता का निधन हो गया। सन 1509 में जब ये अपने पिता का श्राद्ध करने गया गए, तब वहां इनकी मुलाकात ईश्वरपुरी नामक संत से हुई। उन्होंने निमाई से कृष्ण-कृष्ण रटने को कहा। तभी से इनका सारा जीवन बदल गया और ये हर समय भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति में लीन रहने लगे।

भगवान श्रीकृष्ण के प्रति इनकी अनन्य निष्ठा व विश्वास के कारण इनके असंख्य अनुयायी हो गए। सर्वप्रथम नित्यानंद प्रभु व अद्वैताचार्य महाराज इनके शिष्य बने। इन दोनों ने निमाई के भक्ति आंदोलन को तीव्र गति प्रदान की। निमाई ने अपने इन दोनों शिष्यों के सहयोग से ढोलक, मृदंग, झाँझ, मंजीरे आदि वाद्य यंत्र बजाकर व उच्च स्वर में नाच-गाकर हरि नाम संकीर्तन करना प्रारंभ किया। 'हरे-कृष्ण, हरे-कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण, हरे-हरे। हरे-राम, हरे-राम, राम-राम, हरे-हरे, नामक अठारह शब्दीय कीर्तन महामंत्र निमाई की ही देन है। जब ये

कीर्तन करते थे, तो लगता था मानो ईश्वर का आह्वान कर रहे हैं। सन 1510 में संत प्रवर श्री पाद केशव भारती से संन्यास की दीक्षा लेने के बाद निमाई का नाम कृष्ण चैतन्य देव हो गया। बाद में ये चैतन्य महाप्रभु के नाम से प्रख्यात हुए। चैतन्य महाप्रभु संन्यास लेने के बाद नीलांचल चले गए। इसके बाद दक्षिण भारत के श्री रंग क्षेत्र व सेतु बंध आदि स्थानों पर भी रहे। इन्होंने देश के कोने-कोने में जाकर हरिनाम की महत्ता का प्रचार किया। सन 1515 में वृंदावन आए। यहां इन्होंने इमली तला और अक्रूर घाट पर निवास किया। वृंदावन में रहकर इन्होंने प्राचीन श्रीधाम वृंदावन की महत्ता प्रतिपादित कर लोगों की सुप्त भक्ति भावना को जागृत किया। यहां से फिर ये प्रयाग चले गए। इन्होंने काशी, हरिद्वार, शृंगेरी (कर्नाटक), कामकोटि पीठ (तमिलनाडु), द्वारिका, मथुरा आदि स्थानों पर रहकर भगवद्नाम संकीर्तन का प्रचार-प्रसार किया।

चैतन्य महाप्रभु ने अपने जीवन के अंतिम वर्ष जगन्नाथ पुरी में रहकर बिताए। यहीं पर सन 1533 में 47 वर्ष की अल्पायु में रथयात्रा के दिन उनका देहांत हो गया। चैतन्य महाप्रभु ने लोगों की असीम लोकप्रियता और स्नेह प्राप्त किया कहते हैं कि उनकी अद्भुत भगवद्भक्ति देखकर जगन्नाथ पुरी के राजा तक उनके श्रीचरणों में नत हो जाते थे। बंगाल के एक शासक के मंत्री रूपगोस्वामी तो मंत्री पद त्यागकर चैतन्य महाप्रभु के शरणागत हो गए थे। उन्होंने कुष्ठ रोगियों व दलितों आदि को अपने गले लगाकर उनकी अनन्य सेवा की। वे सदैव हिंदू-मुस्लिम एकता का संदेश देते रहे। साथ ही, उन्होंने लोगों को पारस्परिक सद्भावना जागृत करने की प्रेरणा दी। वस्तुतः उन्होंने जातिगत भेदभाव से ऊपर उठकर समाज को मानवता के सूत्र में पिरोया और भक्ति का अमृत पिलाया। वे गौडीय संप्रदाय के प्रथम आचार्य माने जाते हैं।

चैतन्य महाप्रभु के द्वारा कई ग्रंथ भी रचे गए। उन्होंने संस्कृत भाषा में भी तमाम रचनाएं की। उनका मार्ग प्रेम व भक्ति का था। वे नारद जी की भक्ति से अत्यंत प्रभावित थे, क्योंकि नारद जी सदैव 'नारायण-नारायण' जपते रहते थे। उन्होंने विश्व मानव को एक सूत्र में पिरोते हुए यह समझाया कि ईश्वर एक है। उन्होंने लोगों को यह मुक्ति सूत्र भी दिया-

'कृष्ण केशव, कृष्ण केशव, कृष्ण केशव, पाहियाम् । राम राघव, राम राघव, राम राघव, रक्षयाम् ।

हिंदू धर्म में नाम जप को ही वैष्णव धर्म माना गया है और भगवान श्रीकृष्ण को प्रधानता दी गई है। चैतन्य ने इन्हीं की उपासना की और नवद्वीप

से अपने छह प्रमुख अनुयायियों (षड गोस्वामियों), गोपाल भट्ट गोस्वामी, रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, रूप गोस्वामी, जीव गोस्वामी, रघुनाथ दास गोस्वामी को वृंदावन भेजकर वहां गोविंददेव मंदिर, गोपीनाथ मंदिर, मदन मोहन मंदिर, राधा रमण मंदिर, राधा दामोदर मंदिर, राधा श्यामसुंदर मंदिर और गोकुलानंद मंदिर नामक सप्त देवालयों की आधारशिला रखवाई।

लोग चैतन्य को भगवान श्री कृष्ण का अवतार मानते हैं।

3

कबीर

कबीर या भगत कबीर 15वीं सदी के भारतीय रहस्यवादी कवि और संत थे। वे हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन युग में ज्ञानाश्रयी-निर्गुण शाखा की काव्यधारा के प्रवर्तक थे। इनकी रचनाओं ने हिन्दी प्रदेश के भक्ति आंदोलन को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। उनका लेखन सिखों के आदि ग्रंथ में भी देखने को मिलता है। वे हिन्दू धर्म व इस्लाम को न मानते हुए धर्म निरपेक्ष थे। उन्होंने सामाज में फैली कुरीतियों, कर्मकांड, अंधविश्वास की निंदा की और सामाजिक बुराइयों की कड़ी आलोचना की थी। उनके जीवनकाल के दौरान हिन्दू और मुसलमान दोनों ने उन्हें अपने विचार के लिए धमकी दी थी।

कबीर पंथ नामक धार्मिक सम्प्रदाय इनकी शिक्षाओं के अनुयायी हैं।

जीवन

कबीर के (लगभग 14वीं-15वीं शताब्दी)जन्म स्थान के बारे में विद्वानों में मतभेद है, परन्तु अधिकतर विद्वान इनका जन्म काशी में ही मानते हैं, जिसकी पुष्टि स्वयं कबीर का यह कथन भी करता है।

'काशी में परगट भये, रामानंद चेताये'

जीविकोपार्जन के लिए कबीर जुलाहे का काम करते थे।

कबीर की दृढ़ मान्यता थी कि कर्मों के अनुसार ही गति मिलती है स्थान विशेष के कारण नहीं। अपनी इस मान्यता को सिद्ध करने के लिए अंत समय

में वह मगहर चले गए, क्योंकि लोगों की मान्यता थी कि काशी में मरने पर स्वर्ग और मगहर में मरने पर नरक मिलता है। मगहर में उन्होंने अंतिम सांस ली। आज भी वहां पर उनकी मजार व समाधी स्थित है।

भाषा

कबीर की भाषा सधुक्कड़ी एवं पंचमेल खिचड़ी हैं। इनकी भाषा में हिंदी भाषा की सभी बोलियों के शब्द सम्मिलित हैं। राजस्थानी, हरयाणवी, पंजाबी, खड़ी बोली, अवधी, ब्रजभाषा के शब्दों की बहुलता है।

कृतियां

धर्मदास ने उनकी वाणियों का संग्रह 'बीजक' नाम के ग्रंथ में किया जिसके तीन मुख्य भाग हैं–साखी, सबद (पद), रमैनी।

साखी: संस्कृत शब्द साक्षी, का विकृत रूप है साखी और धर्मोपदेश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अधिकांश साखियां दोहों में लिखी गयी हैं पर उसमें सोरठे का भी प्रयोग मिलता है। कबीर की शिक्षाओं और सिद्धांतों का निरूपण अधिकतर साखी में हुआ है।

सबद गेय पद है, जिसमें पूरी तरह संगीतात्मकता विद्यमान है। इनमें उपदेशात्मकता के स्थान पर भावावेश की प्रधानता है य क्योंकि इनमें कबीर के प्रेम और अंतरंग साधना की अभिव्यक्ति हुई है।

रमैनी चौपाई छंद में लिखी गयी है इनमें कबीर के रहस्यवादी और दार्शनिक विचारों को प्रकट किया गया है।

धर्म के प्रति

साधु संतों का तो घर में जमावड़ा रहता ही था। कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे-'मसि कागद छूवो नहीं, कलम गही नहिं हाथ। उन्होंने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे, मुंह से भाखे और उनके शिष्यों ने उसे लिख लिया। आप के समस्त विचारों में रामनाम की महिमा प्रतिध्वनित होती है। वे एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्तिपूजा, रोजा, ईद, मस्जिद, मंदिर आदि को वे नहीं मानते थे।

वे कभी कहते हैं-

'हरिमोर पिउ, मैं राम की बहुरिया' तो कभी कहते हैं, 'हरि जननी मैं बालक तोरा'।

और कभी 'बडा हुआ तो क्या हुआ जैसै'

उस समय हिंदू जनता पर मुस्लिम आतंक का कहर छाया हुआ था। कबीर ने अपने पंथ को इस ढंग से सुनियोजित किया, जिससे मुस्लिम मत की ओर झुकी हुई जनता सहज ही इनकी अनुयायी हो गयी। उन्होंने अपनी भाषा सरल और सुबोध रखी ताकि वह आम आदमी तक पहुंच सके। इससे दोनों सम्प्रदायों के परस्पर मिलन में सुविधा हुई। इनके पंथ मुसलमान-संस्कृति और गोभक्षण के विरोधी थे। कबीर को शांतिमय जीवन प्रिय था और वे अहिंसा, सत्य, सदाचार आदि गुणों के प्रशंसक थे। अपनी सरलता, साधु स्वभाव तथा संत प्रवृत्ति के कारण आज विदेशों में भी उनका समादर हो रहा है।

उसी हालत में उन्होंने बनारस छोड़ा और आत्मनिरीक्षण तथा आत्मपरीक्षण करने के लिये देश के विभिन्न भागों की यात्राएं कीं इसी क्रम में वे कालिंजर जिले के पिथौराबाद शहर में पहुंचे। वहां रामकृष्ण का छोटा सा मन्दिर था। वहां के संत भगवान गोस्वामी के जिज्ञासु साधक थे किंतु उनके तर्कों का अभी तक पूरी तरह समाधान नहीं हुआ था। संत कबीर से उनका विचार-विनिमय हुआ। कबीर की एक साखी ने उन के मन पर गहरा असर किया-

'बन ते भागा बिहरे पड़ा, करहा अपनी बान। करहा बेदन कासों कहे, को करहा को जान।।'

वन से भाग कर बहेलिये के द्वारा खोदे हुए गड्ढे में गिरा हुआ हाथी अपनी व्यथा किस से कहे ?

सारांश यह कि धर्म की जिज्ञासा से प्रेरित हो कर भगवान गोसाई अपना घर छोड़ कर बाहर तो निकल आये और हरिव्यासी सम्प्रदाय के गड्ढे में गिर कर अकेले निर्वासित हो कर असंवाद्य स्थिति में पड़ चुके हैं।

मूर्ति पूजा को लक्ष्य करते हुए उन्होंने एक साखी हाजिर कर दी-

पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजौं पहार। वा ते तो चाकी भली, पीसी खाय संसार।।

कबीर की बाल-लीला

कबीर के काल में, काशी में जलन के रोग का प्रकोप था। एक दिन बालक कबीर धूल-मिट्टी से खेल रहे थे। उसी समय एक वृद्धा स्त्री आयी और

कबीर से अपने जलन-रोग का उपचार करने को बोली। बालक कबीर ने थोड़ी-सी धूल वृद्धा पर डाल दी। वह आरोग्य होकर खुशी-खुशी घर चली गई।

नीरू के घर मांस आने से कबीर का अंत:ध्यान हो जाना

आस-पास के मुसलमानों ने, एक व्यक्ति को बहका कर नीरू के घर मेहमान बनाकर भेजा और उस मेहमान से कह दिया कि वह नीरू को मांस खिलाने को कहेगा। उस व्यक्ति ने ऐसा ही किया। वह मांस खिलाने का हठ करने लगा। नीरू के लाख समझाने और कहने पर भी वह नहीं माना। अंत में नीरू जाति-समाज के डर से मांस लाने को तैयार हो गया। किसी ने सच ही कहा है–

'जाति-पाति हुर्मत के गाहक।
तिनको डर उर पैठयो नाहक॥'

कबीर जान गए कि नीरू मांस लाया है। संध्या में सभी लड़के खेलकर अपने-अपने घर आये, किंतु कबीर नहीं आये। नीमा ने आस-पास के लड़कों से कबीर के बारे में पूछा, उनलोगों से कुछ पता न चल पाया, तो दोनों बहुत अधिक विकल हो गए। रातभर उन लोगों ने ना तो कुछ खाया-पिया और न ही सोए। भोर होते ही नीरू कबीर को खोजने के लिए निकल पड़ा। आस-पास के सभी नगर में नीरू ने कबीर को खोजा, किंतु कबीर का कुछ भी अता-पता न चला। अंत में नीरू पागलों की तरह हर आने-जाने वालों से कबीर के बारे में पूछता-पूछता, इधर-उधर भटकने लगा। नीरू को इस बात का डर था कि अगर वह कबीर को साथ लिए बिना घर जाएगा, तो नीमा प्राण त्याग देगी। वह स्वयं को दोषी ठहराते हुए, गंगाजी में डूबने के लिए कूद गया।

नीरू गंगाजी की गहराइयों में गोता खाने लगा। अचानक उसे एहसास हुआ कि किसी ने उसका हाथ पकड़ कर बाहर कर दिया। नीरू ने जब आँख खोलकर देखा, तो सामने कबीर खड़े थे। वह बहुत प्रसन्न हुआ और कबीर साहब को गले लगाने, उसके नजदीक जाने लगा, किंतु कबीर साहब उससे दूर हो गये। वे कहने लगे, खबरदार ! मेरे शरीर को हाथ मत लगाना। तुम महाभ्रष्ट हो। कबीर के कहने का भाव समझ कर नीरू वात्सल्यभाव से बालक को फिर यह कहता हुआ पकड़ने का प्रयत्न करने लगा–

कहु प्यारे काल्ह कहँ रहेऊ
हम खोजत थकित होइ गयऊ॥

कबीर साहब पीछे हटते हुए बोले–
कहहिं कबीर हम उहां न जाहीं
तुम आभच्छ आनेहु घरमाही॥

अब नीरू को कबीर की बात समझ में आई और बोला–

कहे नीरू कर जोरि अधीना
अब तो चूक सही हम कीना॥
अबकी चूक बकसिये मोही
हाथ जारिके विनवौं तोहीं॥

यह कहते हुए नीरू रोने लगा और नकरगड़ी करने लगा, तब कबीर साहब ने कहा–

ऐसे हम नहिं जैबे भाई
घर आँगन सब लीपौ जाई॥
बर्तन अशुच दूर सब करिहौ
करि अस्नान वस्तर तन फेरिहौ॥
ऐसी करिहाँ जाई तुम, तौ पाइहो वहि ठाँउ।
नाहीं तो घर को को कहै, ताजि जाऊँ यह गाउँ॥

इतना सुनकर नीरू मन-ही-मन बहुत डरा और उसी क्षण घर पहुँचा तथा कबीर की आज्ञानुसार, सफाई करके कबीर के आने की प्रतीक्षा करने लगा। तब कबीर नीरू के घर प्रकट हुए और नीरू तथा नीमा से कहा–

नीरू सुनहु श्रवण दे, फेर जो ऐसी होई।
तब कछु मेरी दोष नहीं, जैदो जन्म बिगोई॥

दोनों स्त्री-पुरुष ने हाथ जोड़कर क्षमा माँगी और कहा अब ऐसी भूल कभी न होगी। आप हमको न त्यागें।

कबीर साहब की सुन्नत

कुछ दिनों के बाद, समस्त जुलाहे इकट्ठा होकर नीरू से कहने लगे कि अपने रसुल अल्लाह की आज्ञा के अनुसार, अब तुम अपने पुत्र का खतना (मुसलमानी) कराओ। एक-एक कर सभी जोलाहे नीरू के घर इकट्ठा हुए और काजी को बुलाया गया। काजी ने नाई को कबीर साहब का खतना करने का हुक्म दिया। नाई उस्तरा लेकर कबीर साहब के पास पहुँचा। कबीर साहब ने नाई को पाँच लिंग दिखलाए और नाई से कहा, इन पाँचों में से जिसको चाहो, तू काट

ले। यह स्थिति देखकर नाई भयभीत हो गया और तुरंत वहाँ से भाग गया। इस प्रकार खतना न हो सका।

कुर्बानी

एक बार कबीर साहब छोटे-छोटे बच्चों के साथ खेल रहे थे। इसी बीच काजी ने गाय की कुर्बानी करने का प्रबंध किया, लेकिन कबीर साहब को इस बात की भनक मिल गई और खेलना छोड़ कर दौड़ते हुए गाय के पास पहुँच गए। आपने देखा कि काजी गाय को समाप्त कर चुका था। आपने काजी को अनेक उपदेश दिये, साथ-ही-साथ काजी को लज्जित भी किया। काजी लजाकर अपने अपराध के निर्मित क्षमा का प्रार्थी हुआ। आपने समाप्त गाय को जीवित कर दिया और अंतर्ध्यान हो गए।

कबीर साहब को नीरू के घर से भगाने का प्रयत्न

नीरू के घर सिद्ध बालक को देखकर, उसकी प्रसिद्धि से आसपास के लोग नीरू से जलते थे। नीरू के द्वारा अपने घर में सदा माँस न लाने की प्रतिज्ञा कर लेने से, मांसाहारी मुसलमान उससे बहुत क्षुब्ध हो गये थे। इन सभी मुसलमानों ने उसे धर्म भ्रष्ट होते, समझकर नीरू को सुधारने की फिक्र करना प्रारंभ कर दिया।

काशी के जोलहन मिली, आनि कियो परपंच।
सबै कहैं नीरू तुम क्या बैठे निश्चिन्त।
बेटे की तुम सुनति कराओ
पंचों का तुम हाथ पुलाओ॥
काजी मुलना को बुलवाओ
शैनी और शराब मँगाओ॥

इस प्रकार की उनकी बात सुनकर नीरू ने कान पर हाथ रखकर कहा–

नीरू कहे सुन्नति बखाओ
पै नहिं गैनी गला कटाओ॥

नीरू की यह बात सुनकर उसकी जाति बिरादरी के लोगों ने उससे क्रोधित होकर कहा–

जोलहा सब तब कहैं रिसाई।
वया नीरू तुम अकिल गवाँई॥

अपने कुल की रीति न छोड़ो।
कुल परिवार करिहें सब भांडो।।
गैनी बिना कैसे बनै, मुसलमान की रीति।
पीर पैगम्बर रूठिहैं, खता खाहुगे मति।।

यह सुनकर नीरू कहा–

नीरू कहै सुनो रे भाई।
ऐसो करौं तो पूत गँवाई।।
एक बार घर आमिष आना,
तेहि कारण सुत आया बिगाना।।
क्या रुठे क्या खुशी हो, पीर पैगम्बर झारि।
गौधात मैं ना करो, नीरू कहै पुकारि।।

सभी जुलाहे कबीर साहब के अंतर्ध्यान होने को जान चुके थे। वह यह भी जानते थे कि नीरू के घर मांस होने से कबीर साहब अंतर्ध्यान हो जाते हैं, इसलिए सब विद्वेशियों और पक्षपातियों ने मिलकर नीरू को बहकाकर उसके द्वारा गोहत्या करानी चाही, जिससे कबीर साहब नीरू के घर से रुष्ट होकर चले जाएं, किंतु जब सब जुलाहों तथा काजी मुसलमानों ने देखा कि नीरू उनकी चाल में नहीं पड़ने वाला है, तो वह दूसरी चाल चले और छल से कहा–

जोलहन मिली छल से कहयो और करु सब साज
नीरू तुमरे कारने गैनी आयड बाज।।

उनलोगों ने विचार किया कि नीरू के अनजाने में गाय जबह करेंगे, जिसको देखकर कबीर वहाँ से भाग जाएँ। काजी सहित अन्य मुसलमानों ने अवसर पाकर चुपचाप गाय मंगाकर, जबह कर दिया। नीरू इस काण्ड से एकदम अज्ञान थे। यद्यपि उन दुष्टों के इस गुप्त काण्ड को किसी ने नहीं जाना, परंतु अंतर्ध्यानी सर्वज्ञ कबीर साहब ने इस बात को जान लिया। वह बच्चों के साथ खेल रहे थे। खेल छोड़कर वहाँ से दौड़े और गाय हत्या के स्थान पर पहुँचे तथा काजी से कहा–

हो काजी यह किन फरमाये, किनके माता तुम छुरी चलाये।
जिसका छीर जु पीजिए तिसको कहिए माए।।
तिसपर छुरी चलाऊँ, किन यह दिया दिढाय।।

यह सुन काजी ने उत्तर दिया–

सुन कबीर बडन सो, होत आई यह बात।
गोस कुतुब औ औलिया, हजरत नबी जमात।।

कबीर साहब ने काजी की बात सुनकर कहा, ऐ काजी ! और मुल्ला तथा दूसरे मुसलमानों! तुमलोग गफलत में पड़कर नाना प्रकार से जीवों को सताने को धर्म मानते हो। वास्तव में यह तुमको नर्क तक ले जाने वाला रास्ता है।

आदम आदि सुधि नहिं पायी। मामा हौब्बा कहते आयी॥
तब नहिं होते तुरुक औ हिंदू। मायको रुधिन पिता को बिंदू॥
तब नहिं होते गाय कसाई। तब बिसमिल किन फरमायी॥
तब नहिं रहो कुल औ जाति। दोजख विहिरत कहाँ उत्पाती॥
मन मसले की खबर न जाने। मति भुलान हो छीन बखाने॥
संयागेकर गुण रखे, बिन जोगे गुण जाय।
जिह्वा स्वाद कारने, कीन्हे बहुत उपास॥

कबीर साहब की ये बातों को सुनकर काजी मुल्ला सभी बहुत क्रोधित हुए और कहने लगे कि नीरू का यह लड़का काफिर हो गया है। ये नबी पैगम्बर पीर औलिया सबको तुच्छ समझता है और स्वयं को बड़ा ज्ञानी। उनके क्रोध को देखकर नीमा और नीरू दोनों बहुत डर गये, किंतु कबीर साहब ने निर्भय होकर विनयपूर्वक काजी से पूछने लगे–

केहि कारण तुम इहवां आयौ।
यहि जगह किन तुमहिं बुलाया

काजी ने कहा–

जोलहन मोहिं बुलायऊ, तोहो सुन्नत काज।
अब तुम मुस्लिम होयके, रोजा करहु निमाज॥
कलमा पढ़ो नबी का, छोड़हु कुफुर की बात।
तब तुम बहिश्तहि जाहुगे बैठहु नबी जमात॥

काजी की बात सुनकर कबीर साहब ने कहा–

जिन्ह कमला कलिमांहि पढ़ाया। कुदरत खोज उनहु नंहि पाया।
करमत करम करै करतूती। वेद किताब भाया सब रीती॥
कमरत सो जों गाय औतरिया। करमत सो जो नामसिं धरिया।
करमत सुन्निति और जनेऊ। हिंदू तुरुक न जाने भेऊ॥
पानी पवन संजोयके, रचिया इ उत्पात।
सून्द्यहिं सुरत समानिया, कासो कहिये जात॥

काजी, मुल्लाहों व कबीर के आपस में बहस को देखकर वहाँ भीड़ जमा हो गयी। भीड़ में से एक हिंदू ने कबीर से कहा कि तुमको अपने धर्म का नियम

मानना चाहिए। काजी और मुल्ला, जो कि धर्म के रक्षक और उपदेशक हैं, उनकी आज्ञा से तुमको अपनी सुन्नत करवा लेनी चाहिए। जैसे देखो हमारे धर्म में भी प्रत्येक बालक की जनेऊ होती है, वरन् उसको शूद्र के तुल्य माना जाता है। वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने एक मत होकर कहा कि इसको पकड़ कर बाँधों और सुन्नत कर दो। काजी ने लोगों की बातों से सहमत होकर कुछ मुस्टंडे मुसलमानों को आज्ञा दीया कि कबीर को रस्सी से बाँधो। काजी के आज्ञानुसार बाँधकर, सभी लोग नाई की खोज करने लगे। नाई पहले ही भयभीत होकर भाग चुका था। काजी घबरा कर इधर-उधर भागता हुआ नाई को ढूंढ़ रहा था। उस समय काजी को कबीर साहब ने कहा–

काजी तुम कौन किताब बखाना।
झंखत बकत रहो निसि बासर मति एको नहि जाना॥
सकति न मानो सुनति करत हो मैं न बेदांगा भाई।
जो खुदाय तुव सुनति करत तो आप काटि किन आई॥

इतना कहकर कबीर साहब उठ खड़े हुए। उनके शरीर से बंधा सभी बाँध खुद ही खुलकर गिर पड़ा। रस्सी को टूटता देखकर, सभी लोग आश्चर्य चकित हो गये। कबीर ने काजी से कहा–

कहे कबीर सुनोहो काजी ! यह सब अहे शैतानी बाजी।
छिः ! छिः ! क्या इसी को मुसलमान कहते हैं।
यहि तरीका जो मुसलिम होई।
तौपै दोजख परै न कोई॥

कबीर ने मुस्कराते हुए काजी से कहा, तुमको स्वयं मुसलमानी का पता नहीं है और मुझको मुसलमान बनाने आये हो––

तुम तो मुस्लिम भये नहिं भाई। कैसे मुस्लिम करहू आयी।

काजी के करतूत और उनकी बयानी को देखकर कबीर ने एक बार फिर कहा–

भूला वे अहमक नदाना। हरदम रामहिं न जाना॥ टेक॥
बरबस आनिके गाय पछाए, गला काहि जिख आप लिया।
जीता जीव मुर्दा करि डाला, तिसको कहत हलाल किया।
जाहि मांस को पाक कहत है, ताकि उत्पत्ति सुन भाई।
रज बीरज सो मास उपाना, सोई नापाक तुम खाई।
अपनो दोष कहत नाहिं अहमक, कहत हमारे बड़ेन किया।

उनकी खुब तुम्हारी गर्दन, जिन तुमको उपदेश दिया।
सियाही गयी सुफैदी आयी, दिल सुकेद अजंहु न हुआ।
रोजा नामाज बांग बया कीजै, हजुरे भीतर बैठ मुआ।
पण्डित वेद पुरान पढ़ै, मुलना पढ़ै जो कुराना।
कहै कबीर वे नरके गये, गिन हरदम रामहिं ना जाना।

इतना कहकर कबीर साहब मरी हुई गाय के पास गये–

बहुविधि से काजी को समझायी। महापाप जीव घात बहायी।
फिर कबीर ग ढिए जायी। मरी गाय तिहिं काल जिवाभी।।

जैसे ही कबीर साहब ने गाय की पीठ पर हाथ फेरा, गाय जीवित होकर उठ बैठी। कबीर साहब ने गाय को गंगा में स्नान कराकर, नगर में स्वतंत्र घूमने को छोड़ दिया और स्वयं भी नीरू और नीमा के घर को उसी दिन से छोड़ दिया। कई दिनों तक नीरू और नीमा को कबीर साहब का दर्शन न हुआ। ये दोनों उनके विरह में, बहुत अधिक विकल होकर पागलों की तरह जहाँ-तहाँ घूमने लगे। अंत में करुणामय कबीर ने करुणा करके दोनों को बाहर किसी दूसरे स्थान पर दर्शन दिया। फिर भी उनके घर नहीं गये। कुछ भक्तों ने काशी से बाहर एक कुटी बांध दी। वे इसी कुटी में रहने लगे। कुछ दिनों के बाद नीमा और नीरू भी वहीं आकर रहने लगे।

बालक कबीर का काफिर की व्याख्या करना

बालक कबीर साहब जब छोटे-छोटे बच्चों के साथ खेलते थे, तब सदैव 'राम-राम', 'गोविंद-गोविंद', 'हरि-हरि' कहा करते थे। यह सुनकर मुसलमान लोग कहते थे कि यह लड़का कट्टर काफिर होगा। बालक कबीर ने उन मुसलमानों को जवाब दिया कि–

1. काफिर वह होगा, जो दूसरों का माल लूटता होगा।
2. काफिर वह होगा, जो कपट भेष बनाकर संसार को ठगता होगा।
3. काफिर वह होगा, जो निर्दोष जीवों को काटता होगा।
4. काफिर वह होगा, जो मांस खाता होगा।
5. काफिर वह होगा, जो मदिरा पान करता होगा।
6. काफिर वह होगा, जो दुराचार तथा बटमारी करता होगा।

फिर मैं कैसे काफिर हूँ ?

उसी समय आपने यह साखी कहा –

गला काटकर बिसमिल करें, ते काफिर बेबूझ।
औरन को काफिर कहै, अपनी कुफ्र न सूझ॥

बालक कबीर वैष्णव के रूप में

बालक कबीर ने एक बार अपने गले में यज्ञोपवीत व माथे पर तिलक डाल लिया। ब्राह्मणों ने देखा तो कहने लगे कि यह तो मेरा धर्म है, तुम्हारा धर्म तो दूसरा है। तूने यह वैष्णव वेष कैसे बना लिया ? और तू 'राम-राम', 'गोविंद-गोविंदश' क्यों कहता है ? यह तो तुम्हारा धर्म नहीं है। तब कबीर साहब ने उनलोगों को उत्तर देते हुए कहा कि गोविंद व राम तो हमारे हृदय में बसे हुए हैं। तुम्हारे कैसे हुए ? तुम गीता पढ़ते हो, परंतु सांसारिक धन के लिए सदैव द्वार-द्वार दौड़ते ही रहते हो और हम तो गोविंद के अतिरिक्त अन्य किसी को जानते ही नहीं हैं। आपने ये शब्द कहा–

मेरी लिह्मवा बिस्तू लैनाचरायन हिरदे बसे गोविंद।
जम द्वारे जब पूछि परे तब का करे मुकुंदा॥ टेक॥
हम घर सूत तनै नित ताना, कंठ जनेऊ तुम्हारे।
तुम नित बांचत गीता गायत्री, गोविंद हिरदे हमारे॥
हम गोरु तुम ग्वाल गुसाई, जनम जनम रखवहो।
कबहिं न बार सो पार चराये, तुम कैसे खसम हमारे॥
तुम बामन हम काशी के जुलहा, बूझो मेरा गयाना।
तुम खोजत नित भुपति राजे, हरि संग मेरा ध्याना॥

मुसलमानों और हिंदूओं, दोनों का अपने-अपने धर्म के पैगम्बर व भगवान के नाम पर अड़े रहने और 'राम-राम', 'गोविंद-गोविंद' को अपना भगवान कहने पर कबीर ने कहा–

भाई दुई जगदीश कहांते आये कौने मति भरमाया।
अल्लाह राम करीमा केलव हरि हजरत नाम धराया॥
गहना एक कनक ते बनता तामें भख न दूजा।
कहव कहन सुनत को दुई कर आये इक निमाज इक पूजा॥
वहि महादेव वही मुहम्मद ब्रह्मा आदम कहिये।
कोई हिंदू काई तुरक कहखे एक जमीं पर रहिये॥
वेद किताब पढ़ैं व खुतबा वे मुलना वे पांडे।
विगत विगत कै नाम धरावें एक भटिया के भांडे॥

कहै कबीर वे दूनो भूले रामे किन्हु न पाया।
वे खसिया व गाय कटावें वादे जन्म गवांया।।

कबीर साहब का रामानंद स्वामी वैष्णव के पास जाना

कबीर साहब जब पाँच वर्ष के हुए, तो आपने स्वयं को शिष्य बनाने के लिए रामानंद स्वामी के पास समाचार भेजा, लेकिन रामानंद स्वामी ने कबीर को शिष्य बनाने से इनकार कर दिया, क्योकि स्वामी रामानंद जी कबीर को शुद्र मानते थे।

कबीर वचन

रामानंद गुरुदिच्छा दीजे। गुरुदच्छिना हमसे लीजो।।

रामानंद वचन

सूद्र के कान न लगा भाई। तीन लोक में मोर बड़ायी।

स्वामी रामानंद जी के स्पष्ट इनकार कर दिये जाने के पश्चात, कबीर साहब वहाँ से चुपचाप लौट आये।

कबीर का एक छोटा लड़का होकर स्वामी के पथ में पड़ना

रामानंद स्वामी प्रत्येक रात के अंत भाग में गंगा स्नान करने के लिए जाते थे। कबीर साहब ने निश्चय किया कि जब स्वामी जी स्नान करने जाएँगे, तो छोटा बच्चा बनकर उनके मार्ग में सो जाएँ। कबीर साहब ने ऐसा ही किया। रामानंद स्वामी जी खड़ाऊँ पहनकर स्नान करने के लिए आए। जैसे ही वह सीढ़ी पर पहुँचे कि उनकी खड़ाऊँ से बालक के सिर में ठोकर लग गई।

स्वामी रामानंद का कबीर साहब को शिष्य स्वीकार करना

कबीर साहब कुछ लोगों के साथ रामानंद स्वामी के ठिकाने पर आये। रामानंद स्वामी उस समय किसी से नहीं मिलते थे और नहीं किसी को देखते थे। लोगों ने कबीर साहब को परदे के पीछे खड़ा कर दिया। कबीर ने स्वामी से कहा कि स्वामी जी आपने मुझे अपना शिष्य बना लिया है? स्वामी जी यह सुनकर आश्चर्यचकित हो गए और पूछा कब ? कबीर साहब ने गंगा नदी के स्नान को जाते हुए सीढ़ियों पर स्वामी के खड़ाऊँ की चोट को विस्तारपूर्वक

बताया और कहा कि आपने मेरे माथे पर हाथ रखकर राम-राम पढ़ने को कहा था। मैं उसी दिन से आपको गुरु मानकर 'राम-राम' पढ़ता रहता हूँ। रामानंद स्वामी जी ने कहा उस समय तो बहुत छोटा बच्चा सीढियों पर मिला था। कबीर साहब ने उत्तर दिया कि स्वामी जी वह मैं ही था और वैसा ही बच्चा बनकर स्वामी के गुफा के भीतर गए और उनके चरणों पर गिरकर कहने लगे कि मैं उस समय ऐसा ही था। कबीर साहब को इस तरह देखकर लोगों को आश्चर्य हुआ। तब स्वामी जी के सबसे बड़े चेले अनंतानंद ने स्वामी जी को समझाया और कहा कि यह बालक मनुष्य नहीं, बल्कि सिद्ध का अवतार है। इस तरह स्वामी जी मान गए और कबीर साहब को अपना शिष्य बना लिया।

कबीर साहब को गुरु के समान मानना

स्वामी रामानंद जी के सभी शिष्य कबीर साहब को गुरु के समान मानते थे। सभी आपको अत्यंत मर्यादा एवं प्रतिष्ठा दिया करते थे। स्वयं आप भी सभी गुरु भाई से नितांत ही नम्रतापूर्वक मिलते थे। स्वामी रामानंद जी के सभी चौदह सौ चौरासी शिष्य आपके आज्ञाकारी थे और आपको सभी का सरदार बनाया गया था।

कबीर के राम

कबीर के राम तो अगम हैं और संसार के कण-कण में विराजते हैं। कबीर के राम इस्लाम के एकेश्वरवादी, एकसत्तावादी खुदा भी नहीं हैं। इस्लाम में खुदा या अल्लाह को समस्त जगत एवं जीवों से भिन्न एवं परम समर्थ माना जाता है। पर कबीर के राम परम समर्थ भले हों, लेकिन समस्त जीवों और जगत से भिन्न तो कदापि नहीं हैं। बल्कि इसके विपरीत वे तो सबमें व्याप्त रहने वाले रमता राम हैं। वह कहते हैं–

'व्यापक ब्रह्म सबनिमैं एकै, को पंडित को जोगी। रावण-राव कवनसूं कवन वेद को रोगी।'

कबीर राम की किसी खास रूपाकृति की कल्पना नहीं करते, क्योंकि रूपाकृति की कल्पना करते ही राम किसी खास ढांचे (फ्रेम) में बंध जाते, जो कबीर को किसी भी हालत में मंजूर नहीं। कबीर राम की अवधारणा को एक भिन्न और व्यापक स्वरूप देना चाहते थे। इसके कुछ विशेष कारण थे, जिनकी चर्चा हम इस लेख में आगे करेंगे। किन्तु इसके बावजूद कबीर राम के साथ एक

व्यक्तिगत पारिवारिक किस्म का संबंध जरूर स्थापित करते हैं। राम के साथ उनका प्रेम उनकी अलौकिक और महिमाशाली सत्ता को एक क्षण भी भुलाए बगैर सहज प्रेमपरक मानवीय संबंधों के धरातल पर प्रतिष्ठित है।

कबीर नाम में विश्वास रखते हैं, रूप में नहीं। हालांकि भक्ति-संवेदना के सिद्धांतों में यह बात सामान्य रूप से प्रतिष्ठित है कि 'नाम रूप से बढ़कर है', लेकिन कबीर ने इस सामान्य सिद्धांत का क्रांतिधर्मी उपयोग किया। कबीर ने राम-नाम के साथ लोकमानस में शताब्दियों से रचे-बसे संश्लिष्ट भावों को उदात्त एवं व्यापक स्वरूप देकर उसे पुराण-प्रतिपादित ब्राह्मणवादी विचारधारा के खांचे में बांधे जाने से रोकने का प्रयास किया।

कबीर के राम निर्गुण-सगुण के भेद से परे हैं। वास्तव में उन्होंने अपने राम को शास्त्र-प्रतिपादित अवतारी, सगुण, वर्चस्वशील वर्णाश्रम व्यवस्था के संरक्षक राम से अलग करने के लिए ही 'निर्गुण राम' शब्द का प्रयोग किया–'निर्गुण राम जपहु रे भाई।' इस 'निर्गुण' शब्द को लेकर भ्रम में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। कबीर का आशय इस शब्द से सिर्फ इतना है कि ईश्वर को किसी नाम, रूप, गुण, काल आदि की सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता। जो सारी सीमाओं से परे हैं और फिर भी सर्वत्र हैं, वही कबीर के निर्गुण राम हैं। इसे उन्होंने 'रमता राम' नाम दिया है। अपने राम को निर्गुण विशेषण देने के बावजूद कबीर उनके साथ मानवीय प्रेम संबंधों की तरह के रिश्ते की बात करते हैं। कभी वह राम को माधुर्य भाव से अपना प्रेमी या पति मान लेते हैं तो कभी दास्य भाव से स्वामी। कभी-कभी वह राम को वात्सल्य मूर्ति के रूप में मां मान लेते हैं और खुद को उनका पुत्र। निर्गुण-निराकार ब्रह्म के साथ भी इस तरह का सरस, सहज, मानवीय प्रेम कबीर की भक्ति की विलक्षणता है। यह दुविधा और समस्या दूसरों को भले हो सकती है कि जिस राम के साथ कबीर इतने अनन्य, मानवीय संबंधपरक प्रेम करते हों, वह भला निर्गुण कैसे हो सकते हैं, पर खुद कबीर के लिए यह समस्या नहीं है।

वह कहते भी हैं–

"संतौ, धोखा कासूं कहिये। गुनमैं निरगुन, निरगुनमैं गुन, बाट छांड़ि क्यूं बहिसे!" नहीं है।

प्रोफेसर **महावीर सरन जैन** ने कबीर के राम एवं कबीर की साधना के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है–'कबीर का सारा जीवन सत्य की खोज तथा असत्य के खंडन में व्यतीत हुआ। कबीर की साधना

'मानने से नहीं', जानने से आरम्भ होती है। वे किसी के शिष्य नहीं, रामानन्द द्वारा चेताये हुए चेला हैं। उनके लिए राम रूप नहीं है, दशरथी राम नहीं है, उनके राम तो नाम साधना के प्रतीक हैं। उनके राम किसी सम्प्रदाय, जाति या देश की सीमाओं में कैद नहीं हैं। प्रकृति के कण-कण में, अंग-अंग में रमण करने पर भी जिसे अनंग स्पर्श नहीं कर सकता, वे अलख, अविनाशी, परम तत्त्व ही राम हैं। उनके राम मनुष्य और मनुष्य के बीच किसी भेद-भाव के कारक नहीं हैं। वे तो प्रेम तत्त्व के प्रतीक हैं। भाव से ऊपर उठकर महाभाव या प्रेम के आराध्य हैं:-

'प्रेम जगावै विरह को, विरह जगावै पीउ, पीउ जगावै जीव को, जोइ पीउ सोई जीउ'-जो पीउ है, वही जीव है। इसी कारण उनकी पूरी साधना ''हंस उबारन आए की साधना है। इस हंस का उबारना पोथियों के पढ़ने से नहीं हो सकता, ढाई आखर प्रेम के आचरण से ही हो सकता है। धर्म ओढ़ने की चीज नहीं है, जीवन में आचरण करने की सतत सत्य साधना है। उनकी साधना प्रेम से आरम्भ होती है। इतना गहरा प्रेम करो कि वही तुम्हारे लिए परमात्मा हो जाए। उसको पाने की इतनी उत्कण्ठा हो जाए कि सबसे वैराग्य हो जाए, विरह भाव हो जाए तभी उस ध्यान समाधि में पीउ जाग्रत हो सकता है। वही पीउ तुम्हारे अंतर्मन में बैठे जीव को जगा सकता है। जोई पीउ है सोई जीउ है। तब तुम पूरे संसार से प्रेम करोगे, तब संसार का प्रत्येक जीव तुम्हारे प्रेम का पात्र बन जाएगा। सारा अहंकार, सारा द्वेष दूर हो जाएगा। फिर महाभाव जगेगा। इसी महाभाव से पूरा संसार पिउ का घर हो जाता है।

सूरज चन्द्र का एक ही उजियारा, सब यहि पसरा ब्रह्म पसारा।
जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी
फूटा कुम्भ जल जलहीं समाना, यह तथ कथौ गियानी।'

कबीर का साहित्यिक परिचय

कबीर साहब निरक्षर थे। उन्होंने अपने निरक्षर होने के संबंध में स्वयं 'कबीर-बीजक' की एक साखी में बताया है, जिसमें कहा गया है कि न तो मैं ने लेखनी हाथ में लिया, न कभी कागज और स्याही का ही स्पर्श किया। चारों युगों की बातें उन्होंने केवल अपने मुँह द्वारा जता दी हैं–

मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।
चारिक जुग को महातम, मुखहिं जनाई बात॥

संत मत के समस्त कवियों में, कबीर सबसे अधिक प्रतिभाशाली एवं मौलिक माने जाते हैं। उन्होंने कविताएँ प्रतिज्ञा करके नहीं लिखी और न उन्हें पिंगल और अलंकारों का ज्ञान था। लेकिन उन्होंने कविताएँ इतनी प्रबलता एवं उत्कृष्टता से कही हैं कि वे सरलता से महाकवि कहलाने के अधिकारी हैं। उनकी कविताओं में संदेश देने की प्रवृत्ति प्रधान है। ये संदेश आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा, पथ-प्रदर्शन तथा संवेदना की भावना सन्निहित है। अलंकारों से सुसज्जित न होते हुए भी आपके संदेश काव्यमय हैं। तात्विक विचारों को इन पद्यों के सहारे सरलतापूर्वक प्रकट कर देना ही आपका एक मात्र लक्ष्य था–

तुम्ह जिन जानों गीत है यहु निज ब्रह्म विचार
केवल कहि समझाता, आतम साधन सार रे।।

कबीर भावना की अनुभूति से युक्त, उत्कृष्ट रहस्यवादी, जीवन का संवेदनशील संस्पर्श करनेवाले तथा मर्यादा के रक्षक कवि थे। आप अपनी काव्य कृतियों के द्वारा पथभ्रष्ट समाज को उचित मार्ग पर लाना चाहते थे।

हरि जी रहे विचारिया साखी कहो कबीर।
यौं सागर में जीव हैं, जे कोई पकड़ै तीर।।

कवि के रूप में कबीर जीव के अत्यंत निकट हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में सहजता को प्रमुख स्थान दिया है। सहजता उनकी रचनाओं की सबसे बड़ी शोभा और कला की सबसे बड़ी विशेषता मानी जाती है। उनके काव्य का आधार यथार्थ है। उन्होंने स्वयं स्पष्ट रूप से कहा है कि मैं आँख का देखा हुआ कहता हूँ और तू कागज की लेखी कहता है–

मैं कहता हूँ आखिन देखी,
तू कहता कागद की लेखी।

वे जन्म से विद्रोही, प्रकृति से समाज-सुधारक एवं प्रगतिशील दार्शनिक तथा आवश्यकतानुसार कवि थे। उन्होंने अपनी काव्य रचनाएँ इस प्रकार कही है कि उसमें आपके व्यक्तित्त्व का पूरा-पूरा प्रतिबिंब विद्यमान है।

कबीर की प्रतिपाद्य शैली को मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा गया है–इनमें प्रथम रचनात्मक, द्वितीय आलोचनात्मक। रचनात्मक विषयों के अंतर्गत सतगुरु, नाम, विश्वास, धैर्य, दया, विचार, औदार्य, क्षमा, संतोष आदि पर व्यावहारिक शैली में भाव व्यक्त किया गया है। दूसरे पक्ष में वे आलोचक, सुधारक, पथ-प्रदर्शक और समन्वयकर्ता के रूप में दृष्टिगत होते हैं। इस पक्ष में उन्होंने

चेतावनी, भेष, कुसंग, माया, मन, कपट, कनक, कामिनी आदि विषयों पर विचार प्रकट किये हैं।

काव्यरूप एवं संक्षिप्त परिचय

कबीर की रचनाओं के बारे में कहा जाता है कि संसार के वृक्षों में जितने पत्ते हैं तथा गंगा में जितने बालू-कण हैं, उतनी ही संख्या उनकी रचनाओं की है–

जेते पत्र वनस्पति औ गंगा की रेन।
पंडित विचारा का कहै, कबीर कही मुख वैन॥

विभिन्न समीक्षकों तथा विचारकों ने कबीर के विभिन्न संग्रहों का अध्ययन करके निम्नलिखित काव्यरूप पाये हैं–

1. साखी,
2. पद,
3. रमेनी,
4. चौंतीसा,
5. वावनी,
6. विप्रमतीसी,
7. वार,
8. थिंती,
9. चाँवर,
10. बसंत,
11. हिंडोला,
12. बेलि,
13. कहरा,
14. विरहुली,
15. उलटवाँसी।

साखी

साखी रचना की परंपरा का प्रारंभ गुरु गोरखनाथ तथा नामदेव जी के समय से प्राप्त होता है। साखी काव्यरूप के अंतर्गत प्राप्त होने वाली, सबसे प्रथम रचना गोरखनाथ की जोगेश्वरी साखी है। कबीर की अभिव्यंजना शैली बड़ी शक्तिशाली

है। प्रतिपाद्य के एक-एक अंग को लेकर इस निरक्षर कवि ने सैकड़ों साखियों की रचना की है। प्रत्येक साखी में अभिनवता का बड़ी कुशलता से प्रकट किया गया है। उन्होंने इसका प्रयोग नीति, व्यवहार, एकता, समता, ज्ञान और वैराग्य आदि की बातों को बताने के लिए किया है। अपनी साखियों में कबीर ने दोहा छंद का प्रयोग सर्वाधिक किया है।

कबीर की साखियों पर गोरखनाथ और नामदेव जी की साखी का प्रभाव दिखाई देता है। गोरखनाथ की तरह से कबीर ने भी अपनी साखियों में दोहा जैसे छोटे छंदों में अपने उपदेश दिये।

संत कबीर की रचनाओं में साखियाँ सर्वाधिक पायी जाती है। कबीर बीजक में 353 साखियाँ, कबीर ग्रंथ वाली में 919 साखियाँ हैं। आदिग्रंथ में साखियों की संख्या 243 है, जिन्हें श्लोक कहा गया है।

प्राचीन धर्म प्रवर्त्तकों के द्वारा, साखी शब्द का प्रयोग किया गया। ये लोग जब अपने गुरुजनों की बात को अपने शिष्यों अथवा साधारणजनों को कहते, तो उसकी पवित्रता को बताने के लिए साखी शब्द का प्रयोग किया करते थे। वे साखी देकर, यह सिद्ध करना चाहते थे कि इस प्रकार की दशा का अनुभव अमुक-अमुक पूर्ववर्ती गुरुजन भी कर चुके हैं। अतः प्राचीन धर्म प्रवर्तकों द्वारा प्रतिपादित ज्ञान को शिष्यों के समक्ष, साक्षी रूप में उपस्थित करते समय जिस काव्यरूप का जन्म हुआ, वह साखी कहलाया।

संत कबीर की साखियाँ, निर्गुण साक्षी के साक्षात्कार से उत्पन्न भावोन्मत्तता, उन्माद, ज्ञान और आनंद की लहरों से सराबोर है। उनकी साखियाँ ब्रह्म विद्या बोधिनी, उपनिषदों का जनसंस्करण और लोकानुभव की पिटारी है। इनमें संसार की असारता, माया मोह की मृग-तृष्णा, कामक्रोध की क्रूरता को भली-भांति दिखाया गया है। ये सांसारिक क्लेश, दुख और आपदाओं से मुक्त कराने वाली जानकारियों का भण्डार है। संत कबीर के सिद्धांतों की जानकारी का सबसे उत्तम साधन उनकी साखियाँ हैं।

साखी आंखी ग्यान को समुझि देखु मन माँहि
बिन साखी संसार का झगरा छूटत नाँहि॥

विषय की दृष्टि से कबीर साहब की सांखियों को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया गया है–

1. लौकिक भाव प्रधान।
2. परलौकिक भाव प्रधान।

लौकिक भाव प्रधान साखियाँ भी तीन प्रकार की हैं–

1. संतमत स्वरूप बताने वाली,
2. पाखण्डों का विरोध करने वाली,
3. व्यवहार प्रधान।

संतमत का स्वरूप बताने वाली साखियाँ–

कबीर साहब ने अपनी कुछ साखियों में संत और संतमत के संबंध में अपने विचार प्रकट किए हैं–

निर बेरी निहकामता साई सेती नेह।
विषिया सूँन्यारा रहे संतरि को अंग एह॥

कबीर साहब की दृष्टि में संत का लक्ष्य धन संग्रह नहीं है–

सौंपापन कौ मूल है एक रुपैया रोक।
साधू है संग्रह करै, हारै हरि सा थोक।
संत व बांधै गाँठरी पेट समाता लेई।
आगे पीछे हरि खड़े जब माँगै तब दई।

संत अगर निर्धन भी हो, तो उसे मन छोटा करने की आवश्यकता नहीं है।

कबीर साहब परंपरागत रुढ़ियों, अंधविश्वासों, मिथ्याप्रदर्शनों एवं अनुपयोगी रीति-रिवाजों के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने हिंदू-मुसलमान दोनों में ही फैली हुई कुरीतियों का विरोध अपनी अनेक साखियों में किया है।

व्यवहार प्रधान साखियाँ

कबीर साहब की व्यवहार प्रधान साखियाँ, नीति और उपदेश प्रधान है। इसमें संसभू के प्रत्येक क्षेत्र में उचित व्यवहार की रीति बताई गई हैं। इन साखियों में मानव मात्र के कल्याणकारी अनुभव का अमृत छिपा हुआ है। पर निंदा, असत्य, वासना, धन, लोभ, क्रोध, मोह, मदमत्सर, कपट आदि का निषेध करके, वे सहिष्णुता, दया, अहिंसा, दान, धैर्य, संतोष, क्षमा, समदर्शिता, परोपकार तथा मीठे वाचन आदि के लिए आग्रह किया गया है। वे त्याज्य कुकर्मों को गिना कर बताते हैं–

गुआ, चोरी, मुखबरी, व्याज, घूस, परमान।
जो चाहे दीदार को एती वस्तु निवार॥

विपत्ति में धैर्य धारण करने के लिए कहते हैं–

देह धरे का दंड है सब काहू पै होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञानकरि मूरख भुगतै रोय॥

वह अपनी वाणी में 'काबू' संयम पर बल देते हुए कहते हैं–

ऐसी बानि बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहु सीतल होय।

परलौकिक भाव प्रधान साखियाँ

संत कबीर साहब इस प्रकार की अपनी साखियों में नैतिक, आध्यात्मिक, सांसारिक, पारलौकिक इत्यादि विषयों का वर्णन किया है।

कुछ साखियाँ–

राम नाम जिन चीन्हिया, झीना पन तासु।
नैन न आवै नींदरी, अंग न जायें मासु।
बिन देखे वह देसकी, बात कहे सो कूर।
आपुहि खारी खात है, बैचत फिरे कपूर।

पद (शब्द)

संत कबीर ने अपने अनुभवों, नीतियों एवं उपदेशों का वर्णन, पदों में भी किया है। पद या शब्द भी एक काव्य रूप है, जिसको प्रमुख दो भागों में बाँटा गया है–

–लौकिक भाव प्रधान,

–परलौकिक भाव प्रधान।

लौकिक भाव प्रधान पदों में सांसारिक भावों एवं विचारों का वर्णन किया गया है। इनको भी दो भागों में विभाजित किया गया है–

–धार्मिक पाखण्डों का खंडन करने वाले पद।

–उपदेशात्मक और नीतिपरक पद।

संत कबीर जातिवाद, ऊँच-नीच की भावना एवं दिखावटी धार्मिक क्रिया-कलापों के घोर विरोधी थे। उन्होंने विभिन्न धर्मों की प्रचलित मान्यताओं तथा उपासना पद्धतियों की अलग-अलग आलोचना की है। वे वेद और कुरान के वास्तविक ज्ञान और रहस्य को जानने पर बल देते हैं–

वेद कितेब कहौ झूठा।
झूठा जो न विचारै।।
झंखत बकत रहहु निसु बासर, मति एकौ नहिं जानी।
सकति अनुमान सुनति किरतु हो, मैं न बदौगा भाई।।

जो खुदाई तेरि सुनति सुनति करतु है, आपुहि कटि कयों न आई।
सुनति कराय तुरुक जो होना औरति को का कहिये॥

रमैनी

रमैनी भी संत कबीर द्वारा गाया गया काव्यरूप है। इसमें चौपाई दो छंदों का प्रयोग किया गया है। रमैनी कबीर साहब की सैद्धांतिक रचनाएँ हैं। इसमें परमतत्त्व, रामभक्ति, जगत और ब्रह्म इत्यादि के बारे में विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

जस तू तस तोहि कोई न जाना लोक कहै सब आनाहि आना।
वो है तैसा वोही जाने। ओही आहि आहि नहिं आने॥

संत कबीर राम को सभी अवतारों से परे मानते हैं–

ना दसरथ धरि औतरि आवा।
ना लंका का राव सतावा॥
अंतर जोति सबद एक नारी। हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी॥
ते तिरिये भग लिंग अनंता। तेउ न जाने आदि औ अंता॥

एक रमैनी में वे मुसलमानों से प्रश्न पूछते हैं–

दर की बात कहाँ दरबेसा। बादशाह है कवने भेष।
कहां कंच कहँ करै मुकाया। मैं तोहि पूंछा मुसलमाना॥
लाल गरेद की नाना बना। कवर सुरहि को करहु सलाया॥
काजी काज करहु तुम कैसा। घर-घर जबह करवाहु भैसा॥

चौंतीसा

चौंतीसा नामक काव्यरूप केवल 'कबीर बीजक' में ही प्रयोग किया गया है। इसमें देवनागरी वर्णमाला के स्वरों को छोड़कर, केवल व्यंजनों के आधार पर रचनाएँ की गई हैं–

पापा पाप करै सम कोई। पाप के करे धरम नहिं होई।
पापा करै सुनहु रे भाई। हमरे से इन किछवो न पाई।
जो तन त्रिभुवन माहिं छिपावै। तत्तहि मिले तत्त सो पावै।
थाथा थाह थाहि नहिं जाई। इथिर ऊथिर नाहिं रहाई।

बावनी

बावनी वह काव्यरूप है, जिसकी द्विपदियों का प्रारंभ नागरी लिपि के बावन वर्णों में से प्रत्येक के साथ क्रमशः होता है। बावनी को इसके संगीतानुसार गाया जाने का रिवाज पाया जाता है। विषय की दृष्टि से यह रचनाएँ आध्यात्मिकता से परिपूर्ण ज्ञात होती हैं।

ब्राह्मण होके ब्रह्म न जानै। घर महँ जग्य प्रतिग्रह आनै
जे सिरजा तेहि नहिं पहचानैं। करम भरम ले बैठि बखानै।
ग्रहन अमावस अवर दुईजा।
सांती पांति प्रयोजन पुजा।।

विप्रमतीसी

विप्रमतीसी नामक काव्य रूप भी केवल 'कबीर बीजक' में पाया जाता है। इसमें ब्राह्मणों के दपं तथा मिथ्याभिमान की आलोचना की गई है। इसका संबंध विप्रमति (ब्राह्मणों की बुद्धि) से बताया जाता है।

ब्राह्मणों की मति की आलोचना करने के लिए, तीस पंक्तियों में गठित काव्यरूप को विप्रमतीसी कहा गया है।

वार

सप्ताह के सातों वारों (दिनों) के नामों को क्रमशः लेकर, की गई उपदेशात्मक रचनाओं वालों काव्यरूप को 'वार' कहा गया है। यह काव्य रूप की रचना केवल आदिग्रंथ में ही प्राप्त होती है।

थिंती

इस काव्य रूप का प्रयोग तिथियों के अनुसार छंद रचना करके साधना की बातें बताने के लिए किया गया है। संत कबीर का यह काव्य रूप भी केवल आदिग्रंथ में पाया जा सकता है।

चाँचर

चाँचर बहुत प्राचीन काल से प्रचलित काव्यरूप है। कालीदास तथा बाणभ की रचनाओं में चर्चरी गान का उल्लेख मिलता है। प्राचीन काल में इसको चर्चरी

या चाँचरी कहा जाता था। संत कबीर ने भी अपनी रचनाओं में इसको अपनाया है। 'कबीर बीजक' में यह काव्य रूप प्राप्त होता है। कहा जाता है कि कबीर के समय में इसका पूर्ण प्रचलन था। कबीर ने इसका प्रयोग आध्यात्मिक उपदेशों को साधारण जन को पहुँचाने के लिए किया है।

जारहु जगका नेहरा, मन का बौहरा हो।
जामें सोग संतान, समुझु मन बोरा हो।
तन धन सों का गर्वसी, मन बोरा हो।
भसम-किरिमि जाकि, समुझु मन बौरा हो।
बिना मेवका देव धरा, मन बौरा हो।
बिनु करगिल की इंट, समुझु मन बौरा हो।

बसंत

संत कबीर साहब का एक अन्य काव्यरूप बसंत है। 'बीजक', 'आदिग्रंथ' और 'कबीर ग्रंथावली' तीनों में इसको देखा जा सकता है। बसंत ऋतु में, अभितोल्लास के साथ गाई जाने वाली पद्यों को फागु, धमार, होली या बसंत कहा जाता है। कबीर ने इस लोकप्रचलित काव्यरूप को अपने उद्देश्य को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए ग्रहण किया है। एक पत्नी अपने पति की प्रशंसा करते हुए कहती है–

भाई मोर मनुसा अती सुजान, धद्य कुटि-कुटि करत बिदान।
बड़े भोर उठि आंगन बाढु, बड़े खांच ले गोबर काढ़
बासि-भात मनुसे लीहल खाय, बड़ धोला ले पानी को गाय
अपने तरया बाधों पाट, ले बेचौंगी हाटे हाट
कहँहि कबीर ये हरिक काज, जोइया के डिंग रहिकवनि लाज

हिंडोला

सावन के महीने में महिलाएँ हिंडोला झूलने के साथ-साथ, गीत भी गाती है। इन्हीं गीत को अनेक स्थानों पर हिंडोला के नाम से जाना जाता है। संत कबीर ने इसी जनप्रचलित काव्यरूप को अपने ज्ञानोपदेश का साधन बनाया है। वह पूरे संसार को एक हिंडोला मानते हैं। वे इस प्रकार वर्णन करते हैं–

भ्रम का हिंडोला बना हुआ है। पाप पुण्य के खंभे हैं। माया ही मेरु हैं, लोभ का मरुषा है, विषय का भंवरा, शुभ-अशुभ की रस्सी तथा कर्म की पटरी

लगी हुई है। इस प्रकार कबीर साहब समस्त सृष्टि को इस हिंडोले पर झुलते हुए दिखाना चाहते हैं–

भरम-हिंडोला ना, झूलै सग जग आय।
पाप-पुण्य के खंभा दोऊ मेरु माया मोह।
लोभ मरुवा विष भँवरा, काम कीला ठानि।
सुभ-असुभ बनाय डांडी, गहैं दोनों पानि।
काम पटरिया बैठिके, को कोन झूलै आनि।
झूले तो गन गंधर्व मुनिवर,झूलै सुरपति इंद
झूलै तो नारद सारदा, झूलै व्यास फनींद।

बेलि

संत कबीर की बेलि उपदेश प्रधान काव्यरूप है। इसके अंतर्गत सांसारिक मोह ममता में फँसे जीव को उपदेश दिया गया है। 'कबीर बीजक' में दो रचनाएँ बेलि नाम से जानी जाती हैं। इसकी पंक्ति के अंत में 'हो रमैया राम' टेक को बार-बार दुहराया गया है।

कबीर साहब की एक बेलि–

हंसा सरवर सरीर में, हो रमैया राम।
जगत चोर घर मूसे, हो रमैया राम।
जो जागल सो भागल, हो रमैया राम।
सावेत गेल बिगोय, हो रमैया राम।

कहरा

कहरा काव्यरूप में क्षणिक संसार के मोह को त्याग का राम का भजन करने पर बल दिया जाता है। इसके अंतर्गत यह बताया जाता है कि राम के अतिरिक्त अन्य देवी-देवताओं की पूजा करना व्यर्थ है। यह कबीर की रचनाओं का जन-प्रचलित रूप है–

रामनाम को संबहु बीरा, दूरि नाहिं दूरि आसा हो।
और देवका पूजहु बौरे, ई सम झूठी आसा हो।
उपर उ कहा भौ बौरे, भीटर अजदूँ कारो हो।
तनके बिरघ कहा भौ वौरे, मनुपा अजहूँ बारो हो।

बिरहुली

बिरहुली का अर्थ सर्पिणी है। यह शब्द बिरहुला से बना है, जिसका अर्थ सपं होता है। यह शब्द लोक में सर्प के विष को दूर करने वाले गायन के लिए प्रयुक्त होता था। यह गरुड़ मंत्र का प्राकृत नाम है। गाँव में इस प्रकार के गीतों को विरहुली कहा जाता है। कबीर साहब की बिरहुली में विषहर और विरहुली दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है। मनरूपी सर्प के डस लेने पर कबीर ने बिरहुली कहा–

आदि अंत नहिं होत बिरहुली। नहिं जरि पलौ पेड़ बिरहुली।
निसु बासर नहिं होत बिरहुली। पावन पानि नहिं भूल बिरहुली।
ब्रह्मादिक सनकादि बिरहुली। कथिगेल जोग आपार बिरहुली।
बिषहा मंत्र ने मानै बिरहुली। गरुड़ बोले आपार बिरहुली।

उलटवाँसी

बंधी बधाई विशिष्ट अभिव्यंजना शैली के रूप में, उलटवाँसी भी एक काव्यरूप है। इसमें आध्यात्मिक बातों का लोक विपरीत ढंग से वर्णन किया जाता है। इसमें वक्तव्य विषय को प्रस्तुत करने का एक विशेष ढंग होता है–

तन खोजै तब पावै रे।
उलटी चाल चले गे प्राणी, सो सरजै घर आवेरो

धर्म विरोध संबंधी उलटवाँसिया

अम्बर बरसै धरती भीजे, यहु जानैं सब कोई।
धरती बरसे अम्बर भीजे, बूझे बिरला कोई।
मैं सामने पीव गोहनि आई।
पंच जना मिलिमंडप छायौ, तीन जनां मिलि लगन लिखाई।

सामान्यरूप में कबीर साहब ने जन-प्रचलित काव्यरूप को अपनाया है। जन-प्रचलित होने के कारण ही सिंहों, माथों, संतों और भक्तों के द्वारा इनको ग्रहण किया गया।

विचारों और भावों के साथ ही, काव्यरूपों के क्षेत्र में भी कबीर साहब को आदर्श गुरु तथा मार्गदर्शक माना गया है। परवर्ती संतों तथा भक्तों ने उनके विचारों और भावों के साथ-साथ काव्यरूपों को भी अपनाया। कबीर साहब ने इन काव्यरूपों को अपना करके महान और अमर बना दिया।

कबीर के काव्य में दाम्पत्य एवं वात्सल्य के द्योतक प्रतीक पाये जाते हैं। उनकी रचनाओं में सांकेतिक, प्रतीक, पारिभाषिक प्रतीक, संख्यामूलक प्रतीक, रुपात्मक प्रतीक तथा प्रतीकात्मक उलटवाँसियों के सुंदर उदाहरण पाए जाते हैं।

कबीर की साखी

सतगुरु सवाँ न को सगा, सोधी सईं न दाति।
हरिजी सवाँ न को हितू, हरिजन सईं न जाति।।1।।

सद्गुरु के समान कोई सगा नहीं है। शुद्धि के समान कोई दान नहीं है। हरि के समान कोई हितकारी नहीं है, हरि सेवक के समान कोई जाति नहीं है।

बलिहारी गुरु आपकी, घरी घरी सौ बार।
मानुष तैं देवता किया, करत न लागी बार।।2।।

मैं अपने गुरु पर प्रत्येक क्षण सैकड़ों बार न्यौछावर जाता हूँ, जिसने मुझको बिना विलम्ब के मनुष्य से देवता कर दिया।

सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघारिया, अनँत दिखावनहार।।3।।

सद्गुरु की महिमा अनन्त है। उसका उपकार भी अनन्त है। उसने मेरी अनन्त दृष्टि खोल दी, जिससे मुझे उस अनन्त प्रभु का दर्शन प्राप्त हो गया।

राम नाम कै पटंतरे, देबे कौं कुछ नाहिं।
क्या लै गुरु संतोषिए, हौंस रही मन माँहि।।4।।

गुरु ने मुझे राम नाम का ऐसा दान दिया है कि मैं उसकी तुलना में कोई भी दक्षिणा देने में असमर्थ हूँ।

सतगुरु कै सदकै करूँ, दिल अपनीं का साँच।
कलिजुग हम सौं लड़ि पड़ा, मुहकम मेरा बाँच।।5।।

सद्गुरु के प्रति सच्चा समर्पण करने के बाद कलियुग के विकार मुझे विचलित न कर सके और मैंने कलियुग पर विजय प्राप्त कर ली।

सतगुरु शब्द कमान ले, बाहन लागे तीर।
एक जु बाहा प्रीति सों, भीतर बिंधा शरीर।।6।।

मेरे शरीर के अन्दर (अन्तरात्मा में) सद्गुरु के प्रेमपूर्ण वचन बाण की भाँति प्रवेश कर चुके हैं, जिससे मुझे आत्म-ज्ञान प्राप्त हो गया है।

सतगुरु साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही भैं मिलि गया, पड्या कलेजै छेक।।7।।

सद्गुरु सच्चे वीर हैं। उन्होंने अपने शब्दबाण द्वारा मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव डाला है।

पीछैं लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।
आगैं थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि॥8॥

मैं अज्ञान रूपी अन्धकार में भटकता हुआ लोक और वेदों में सत्य खोज रहा था। मुझे भटकते देखकर मेरे सद्गुरु ने मेरे हाथ में ज्ञानरूपी दीपक दे दिया, जिससे मैं सहज ही सत्य को देखने में समर्थ हो गया।

दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहना, बहुरि न आँवौं हट्ट॥9॥

कबीर दास जी कहते हैं कि अब मुझे पुनः इस जन्म-मरणरूपी संसार के बाजार में आने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मुझे सद्गुरु से ज्ञान प्राप्त हो चुका है।

ग्यान प्रकासा गुरु मिला, सों जिनि बीसरिं जाइ।
जब गोविंद कृपा करी, तब गुर मिलिया आई॥10॥

गुरु द्वारा प्रदत्त सच्चे ज्ञान को मैं भूल न जाऊँ, ऐसा प्रयास मुझे करना है, क्योंकि ईश्वर की कृपा से ही सच्चे गुरु मिलते हैं।

कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया आटैं लौंन।
जाति पाँति कुल सब मिटे, नाँव धरौगे कौन॥11॥

कबीर कहते हैं कि मैं और मेरे गुरु आटे और नमक की तरह मिलकर एक हो गये हैं। अब मेरे लिये जाति-पाति और नाम का कोई महत्व नहीं रह गया है।

जाका गुरु भी अँधला, चेला खरा निरंध।
अंधहि अंधा ठेलिया, दोनों कूप पडंत॥12॥

अज्ञानी गुरु का शिष्य भी अज्ञानी ही होगा। ऐसी स्थिति में दोनों ही नष्ट होंगे।

नाँ गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेल्याडाव।
दोनौं बूड़े धार मैं, चढ़ि पाथर की नाव॥13॥

साधना की सफलता के लिए ज्ञानी गुरु तथा निष्ठावान साधक का संयोग आवश्यक है। ऐसा संयोग न होने पर दोनों की ही दुर्गति होती है। जैसे कोई पत्थर की नाव पर चढ़ कर नदी पार करना चाहे।

चौसठि दीवा जोइ करि, चौदह चंदा माँहि।
तिहि घर किसकौ चाँन्दना, जिहि घर गोविंद नाँहि।।14।।

ईश्वर भक्ति के बिना केवल कलाओं और विद्याओं की निपुणता मात्र से मनुष्य का कल्याण सम्भव नहीं है।

भली भई जु गुर मिल्या, नातर होती हानि।
दीपक जोति पतंग ज्यूँ, पड़ता आप निदान।।15।।

कबीर दास जी कहते हैं कि सौभाग्यवश मुझे गुरु मिल गया अन्यथा मेरा जीवन व्यर्थ ही जाता तथा मैं सांसारिक आकर्षणों में पड़कर नष्ट हो जाता।

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवैं पडंत।
कहै कबीर गुर ग्यान तैं, एक आध उबरंत।।16।।

माया का आकर्षण इतना प्रबल है कि कोई विरला ही गुरु कृपा से इससे बच पाता है।

संसै खाया सकल जग, संसा किनहुँ न खद्ध।
जे बेधे गुरु अष्षिरां, तिनि संसा चुनिचुनि खद्ध।।17।।

अधिकांश मनुष्य संशय से ग्रस्त रहते हैं। किन्तु गुरु उपदेश से संशय का नाश संभव है।

सतगुर मिल्या त का भया, जे मनि पाड़ी भोल।
पांसि विनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोल।।18।।

सद्गुरु मिलने पर भी यह आवश्यक है कि साधना द्वारा मन को निर्मल किया जाय अन्यथा गुरु मिलन का संयोग भी व्यर्थ चला जाता है।

बूड़ा था पै ऊबरा, गुरु की लहरि चमंकि।
भेरा देख्या जरजरा, (तब) ऊतरि पड़े फरंकि।।19।।

कबीर दास जी कहते हैं कि कर्मकाण्ड रूपी नाव से भवसागर पार करना कठिन था। अत: मैंने कर्मकाण्ड छोड़कर गुरु द्वारा बताये गये मार्ग से आसानी से सिद्धि प्राप्त कर ली।

गुरु गोविंद तौ एक है, दूजा यहु आकार।
आपा मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार।।20।।

गुरु और ईश्वर में कोई भेद नहीं है। जो साधक अहंता का भाव त्याग देता है वह मोक्ष को प्राप्त करता है।

कबीर सतगुर ना मिल्या, रही अधूरी सीख।
स्वाँग जती का पहिरि करि, घरि घरि माँगे भीख।।21।।

सद्गुरु के मार्गदर्शन के अभाव में साधना अधूरी रह जाती है और ऐसे लोग संन्यासी का वेश बनाकर केवल भिक्षा मांगते रहते हैं।

सतगुर साँचा, सूरिवाँ, तातैं लोहि लुहार।
कसनी दे कंचन किया, ताई लिया ततसार।।22।।

इस साखी में कबीर दास जी ने सद्गुरु के लिए सोनार और लोहार का दृष्टान्त दिया है। सोनार की भाँति गुरु शिष्य को साधना की कसौटी पर परखता है फिर लोहार की भाँति तपाकर शिष्य के मन को सही आकार देता है।

निहचल निधि मिलाइ तत, सतगुर साहस धीर।
निपजी मैं साझी घना, बाँटे नहीं कबीर।।23।।

कबीर दास जी कहते हैं कि सद्गुरु की कृपा से आत्मज्ञान का आनन्द मुझे मिला है, किन्तु चाह कर भी मैं इस आनन्द को दूसरों के साथ बाँट नहीं सकता क्योंकि आत्मानुभूति के लिए व्यक्ति को स्वयं साधना करनी पड़ती है।

सतगुर हम सूँ रीझि करि, कहा एक परसंग।
बरसा बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग।।24।।

सद्गुरु ने प्रसन्न होकर हमसे एक रहस्य की बात बतलायी, जिससे प्रेम का बादल इस प्रकार बरसा कि हम उसमें भींग गये।

कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरस्या आइ।
अंतरि भीगी आतमाँ, हरी भई बनराई।।25।।

कबीर कहते हैं कि सद्गुरु के बताये हुए मार्ग से प्रेम का बादल उमड़कर हमारे ऊपर बरसने लगा। हमारी अन्तरात्मा भींग गयी और जीवनरूपी वनराशि हरी हो गयी।

:: सुमिरन ::

कबीर कहता जात है, सुनता है सब कोइ।
राम कहें भल होइगा, नहिं तर भला न होइ।।26।।

कबीरदास कहते हैं कि मैं कहता जाता हूँ अर्थात् बराबर कहता रहा हूँ और सभी मेरी बात सुनते भी हैं, किन्तु मेरे उपदेश के अनुरूप कोई आचरण नहीं करता। मेरा कहना यही है कि प्रभु के स्मरण से ही कल्याण होगा और किसी प्रकार से कल्याण नहीं हो सकता।

कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गये ब्रह्म महेस।
राम नाम ततसार है, सब काहू उपदेस।।27।।

कबीर कहते हैं कि ब्रह्मा और शिव ने सारे संसार को एक मुख्य उपदेश दिया है और मैं भी वही कहता हूँ कि राम-नाम ही वास्तव में सार वस्तु है।

तत्त तिलक तिहुँ लोक मैं, रामनाम निज सार।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार।।28।।

तीनों लोकों में श्रेष्ठ तत्त्व रामनाम है और वही अपना भी सार है। भक्त कबीर ने अपने मस्तक पर उसको धारण कर लिया और इससे उनके जीवन में अपार शोभा आ गयी।

भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा वाचा कर्मना, कबीर सुमिरन सार।।29।।

प्रभु की भक्ति और उनके नाम का भजन (जप) यही वस्तुतः सार है और सब बातें अपार दुःख हैं। कबीर का यह कहना है कि मन, वचन और कर्म से प्रभु का स्मरण ही जीवन का सार है।

चिंता तौ हरि नाँव की और न चितवै दास।
जे कछु चितवैं राम बिन, सोइ काल की पास।।30।।

कबीर दास कहते हैं कि मैं तो केवल हरि नाम का चिन्तन करता हूँ और किसी वस्तु का चिन्तन नहीं करता। जो लोग राम को छोड़कर और कुछ चिन्तन करते हैं, वे बन्धन और मृत्यु में फँसते हैं।

मेरा मन सुमिरै राम को, मेरा मन रामहि आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रहा, सीस नवावौं काहि।।31।।

मेरा मन राम का स्मरण करते-करते राममय हो गया। ऐसी स्थिति में अब मैं किसको नमस्कार करूँ?

तूँ तूँ करता तू भया, मुझ मैं रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूँ।।32।।

मुझमें अहंभाव समाप्त हो गया। मैं पूर्ण रूप से तेरे ऊपर न्यौछावर हो गया हूँ और अब जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू दिखलाई देता है अर्थात् सारा जगत् ब्रह्ममय हो गया है।

कबीर निरभै राम जपु, जब लगि दीवै बाति।
तेल घटै बाती बुझै, (तब) सोवैगा दिन राति।।33।।

कबीर कहते हैं कि जब तक शरीर रूपी दीपक में प्राण रूपी वर्तिका विद्यमान है अर्थात् जब तक जीवन है, तब तक निर्भय होकर राम नाम का स्मरण करो। जब तेल घटने पर बत्ती बुझ जायेगी अर्थात् शक्ति क्षीण होने पर जब जीवन

समाप्त हो जायेगा तब तो तू दिन-रात सोयेगा ही अर्थात् मृत हो जाने पर जब तेरा शरीर निश्चेतन हो जायेगा, तब तू क्या स्मरण करेगा ?

कबीर सूता क्या करै, जागि न जपै मुरारि।
इक दिन सोवन होइगा, लम्बे पाँव पसारि।।34।।

कबीर जीव को चेतावनी देते हैं कि हे जीव ! तू अज्ञान-निद्रा में सोते हुए क्या कर रहा है? जग कर अर्थात् इस निद्रा को त्याग कर भगवान का स्मरण कर। एक दिन तो तुझे पैर फैलाकर चिर निन्द्रा में मग्न होना ही है।

कबीर सूता क्या करै, गुन गोविंद के गाई।
तेरे सिर पर जम खड़ा, खरच कदे का खाई।।35।।

कबीर कहते हैं कि हे जीव ! तू अज्ञान-निद्रा में सोया हुआ क्या कर रहा है? तू प्रभु का गुणगान क्यों नहीं करता है? तेरे सिर पर यमराज खड़ा है। तू भी काल-ग्रस्त हो जाएगा, बचेगा नहीं। इसलिए जीवन रहते हुए सचेत होकर भगवान का स्मरण कर।

केसौ कहि कहि कूकिए, नाँ सोइय असरार।
राति दिवस कै कूकनै, कबहुँक लगे पुकार।।36।।

प्रभु को निरन्तर आर्त्त स्वर से पुकारते रहो। घोर निद्रा में न पड़े रहो। दिन-रात की पुकार से, सम्भव है, कभी सुनवाई हो जाय और तुम्हारी पुकार लग जाये।

जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहिं राम।
ते नर इस संसार में, उपजि गये बेकाम।।37।।

जिनके हृदय में न प्रेम है, न प्रेम का आस्वाद और जिनकी जिह्वा पर राम नाम भी नहीं है, वे मनुष्य इस संसार में व्यर्थ पैदा होकर नष्ट होते हैं।

कबीर प्रेम न चाषिया, चषि न लीया साव।
सूने घर का पाहुनाँ ज्यूँ आया त्यूँ जाव।।38।।

कबीर कहते है कि जिसने प्रभु के प्रेम का अनुभव नहीं किया उसका इस संसार में जन्म लेना और मर जाना सूने घर में अतिथि के आने-जाने के समान है।

पहिलै बुरा कमाई करि, बाँधी विष की पोट।
कोटि करम फिल पलक में, (जब) आया हरि की ओट।।39।।

पहले अर्थात् पूर्व जन्म में अनेक पाप-कर्म करके जीव ने जो विष की गठरी बाँध रखी है, प्रभु की शरण में जाने पर वह उसको क्षण भर में फेंक कर शुद्ध हो जाता है।

कोटि कर्म पेलै पलक में, जे रंचक आवै नाउँ।
अनेक जुग जो पुन्नि करै, नहीं राम बिन ठाउँ।।40।।

यदि प्रभु का तनिक भी नाम-स्मरण किया जाये तो वह पूर्व जन्म के करोड़ों दुष्कर्मों को क्षण भर में ढकेल कर नष्ट कर सकता है। किन्तु-भक्ति के बिना मनुष्य चाहे अनेक युगों तक पुण्य करे, उसको कोई ठौर-ठिकाना नहीं मिल सकता है।

जिहि हरि जैसा जानियां, तिनकौ तैसा लाभ।
ओसों प्यास न भाजई, जब लगि धसै न आभ।।41।।

प्रभु को जिसने जिस प्रकार पहचाना है, उसी प्रकार उसको लाभ प्राप्त होता है। जब तक प्यासा पानी में डुबकी नहीं लगाता, तब तक केवल ओस चाटने से प्यास नहीं जाती।

राम पियारा छांडि करि, करै आन का जाप।
वेस्या केरा पूत ज्यौं, कहै कौन सौं बाप।।42।।

जो परम मित्र परमात्मा राम को छोड़कर अन्य देव-देवी का जप करता है, वह वेश्या के पुत्र के समान है, जो अपने वास्तविक पिता को नहीं जानता। वस्तुतः परमात्मा ही सबका पिता है, अन्य कोई नहीं।

कबीर आपन राम कहि औरन राम कहाइ।
जिहि मुखि राम न ऊचरै, तिहि मुख फेरि कहाइ।।43।।

कबीर कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं राम का जप करना ही चाहिए, उसे औरों से भी 'राम' कहलवाना चाहिए। जो व्यक्ति राम नाम का उच्चारण नहीं करता है, उससे बार-बार कहलाना चाहिये।

जैसे माया मन रमैं, यौं जे राम रमाइ।
(तौ) तारा मंडल बेधि कै, जहाँ के सो तहँ जाइ।।44।।

जिस प्रकार जीव का मन माया में रमण करता है, उसी प्रकार यदि उसका मन राम में रमण करे तो वह ब्रह्म में लीन हो सकता है।

लूटि सकै तौ लूटि लै, राम नाम की लूटि।
फिर पाछे पछिताहुगे, यहु तन जैहै छूटि।।45।।

मानव शरीर ही एक ऐसी योनि है, जिसमें साधना सम्भव है। जब यह शरीर छूट जाएगा तो यह आध्यात्मिक साधना संभव न हो सकेगी और तब पछताओगे कि एक ईश्वर प्रदत्त अवसर को गँवा दिया।

लूटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम भंडार।
काल कंठ तैं गहेगा, रूँधै दसों दुवार।।46।।

राम नाम का अक्षय भण्डार यथाशक्ति लूट लो। जब काल तुम्हारे कंठ को दबोचेगा, तब शरीर के दसों द्वार अवरुद्ध हो जायेंगे। उस समय तुम चेतना-शून्य हो जाओगे और राम नाम का स्मरण कैसे कर सकोगे ?

लंबा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार।
कहौ संतौ क्यों पाइए, दुर्लभ हरि दीदार।।47।।

पथिक का घर बहुत दूर है और मार्ग केवल लम्बा ही नहीं, दुस्तर भी है। मार्ग में बहुत से बटमार भी मिलते हैं। ऐसी स्थिति में अपने निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचना अत्यन्त दुर्लभ है। इसी प्रकार प्रभु की प्राप्ति अपना लक्ष्य है। इसलिए चेत जाओ और गुरु की सहायता से मार्ग से विघ्नों से बचते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करो।

गुन गाए, गुन ना कटै, रटै न, राम बियोग।
अह निसि हरि ध्यावै नहीं, क्यों पावै दुर्लभ जोग।।48।।

प्रभु का केवल गुणगान करने से कि वह सर्वव्यापी हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं और कीर्तन-भजन करने से प्रकृति का त्रिगुणात्मक बन्धन नहीं कट सकता। यदि भक्त हृदय से उसका स्मरण न करता रहे तो प्रभु से वियोग बना रहता है।

कबीर कठिनाई खरी, सुमिरताँ हरि नाम।
सूली ऊपरि नट विद्या, गिरै त नाहीं ठाम।।49।।

कबीर कहते हैं कि प्रभु के भक्ति-मार्ग में बड़ी कठिनाई है। यह कठिनाई उसी प्रकार की है, जेसै सूली के ऊपर नट द्वारा दिखलायी जाने वाली कला, जिसमें हमेशा यह भयावह स्थिति बनी रहती है कि यदि वह गिरा तो उसके बचने का कोई सहारा नहीं है।

कबीर राम ध्याइ लै, जिभ्या सौं करि मंत।
हरि सागर जिनि बीसरै, छीलर देखि अनंत।।50।।

कबीर कहते हैं कि जिह्वा से तो राम का मन्त्र जपते रहो और मन से उनका ध्यान करते रहो। मन्त्र जपना प्राण की क्रिया है, ध्यान मन की क्रिया। अत: प्रभु तो सागर के समान हैं इसलिये छिछले तालाब रूपी देव-देवियों के चक्कर में पड़कर महासागर के समान प्रभु को मत भुला दो।

कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अमृत गुण गाइ।
फूटा नग ज्यों जोड़ि मन, संधिहि संधि मिलाइ॥51॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव ! तू उस अमर तत्त्व का गुणगान कर, जो अमृत के समान औरों को भी अमर कर देता है। अपने चित्त को प्रभु में उसी प्रकार मिला दे, जैसे जौहरी फूटे हुए नग को संधि से संधि कर अर्थात् आपस में मिलाकर जोड़ देता है।

कबीर चित्त चमंकिया, चहुँ दिस लागी लाइ।
हरि सुमिरन हाथौं घड़ा बेगे लेहु बुझाइ॥52॥

कबीर कहते हैं कि इस संसार में सर्वत्र विषय वासना रूपी आग लगी हुई है। उसके ताप से तेरा चित्त तप्त हो उठा है। परन्तु हे भक्त! तू घबड़ा मत। प्रभु के स्मरण-रूपी पावन जल से भरा हुआ घट तेरे हाथ में है अर्थात् तू प्रभु का स्मरण करने की स्थिति में है। उस घड़े से तू विषय-वासना रूपी आग को शीघ्र ही अधीन कर ले, अर्थात् बुझा ले।

:: ग्यान विरह ::

दीपक पावक आँनिया,तेल भि आना संग।
तीन्यँ मिलि करि जोइया, (तब) उड़ि उड़ि पड़ैं पतंग॥53॥

ज्योंति के लिए तीन तत्त्वों की आवश्यकता होती है-दीपक, आग और तेल। इसी प्रकार जीव में ज्ञान रूपी ज्योंति तभी आ सकती हैं, जब गुरु जीव रूपी दीपक में ज्ञान रूपी अग्नि और प्रेम अथवा भक्ति रूपी तेल एकत्र कर तीनों को योजित कर दे। ऐसा होने पर फिर तो विषय-वासना रूपी पतिंगे स्वतः आ-आकर जल मरते हैं।

मारा है, जे मरैगा, बिन सर थोथी भालि।
पड़ा पुकारै ब्रिछ तरि, आजि मरै कै काल्हि॥54॥

यदि गुरु ने केवल ज्ञान-विहीन विरह का बाण मारा है, तब भी शिष्य मरेगा अर्थात् अपना या अहंभाव खोयेगा अवश्य। ठीक इसी प्रकार जिसमें केवल रागात्मक विरह है, वह भी अहंभाव खोएगा, किन्तु बहुत समय के बाद। जिसको ज्ञान संयुक्त विरह का बाण लगा है, वह शीघ्र ही अहंभाव खो देगा।

झल ऊठी झोली जली, खपरा फूटिम फूटि।
जोगी था सो रमि गया, आसनि रही विभूति॥55॥

ज्ञान रूपी अग्नि प्रज्ज्वलित हुई, उसमें योगी के सारे संचित कर्मों की झोली जल गयी और क्रियमाण कर्म रूपी भिक्षापात्र भी टूट-फुट गया अर्थात्

अब उसका भी योगी पर कोई प्रभाव न रहा। उसके भीतर जो तत्त्व साधना कर रहा था, वह ब्रह्म में विलुप्त हो गया। अब आसन पर केवल भस्म रह गया अर्थात् साधक अपने पूर्व रूप में न रह कर अवशेष मात्र प्रतीक रूप में कहने-सुनने को रह गया।

आगि जु लागी नीर महिं, कांदौ जरिया झारि।
उतर दखिन के पंडिता, मुए बिचारि बिचारि॥56॥

पानी में आग लग गयी और उसका कीचड़ सम्पूर्णतया जल गया अर्थात् अवचेतन में जो दूषित संस्कार और वासनाएँ हैं वे भस्म हो गई। उत्तर-दक्षिण के पंडित (पोथी तक सीमित ज्ञान वाले पंडित) अर्थात् चारों ओर के शास्त्री विचार कर हार गये पर इसका मर्म किसी की समझ में न आया।

दौं लागी सायर जला पंखी बैठे आई।
दाधी देह न पालवै, सद्गुरु गया लगाइ॥57॥

ज्ञान-विरह की अग्नि से मानस-सरोवर जल गया। अब हंस रूपी शुद्ध जीव ऊपर स्थित हो गया अर्थात् वासनाओं और पृथक् वैयक्तिक सत्ता से विमुक्त हो गया। पृथक् वैयक्तिक सत्ता रूपी देह भस्म हो गयी। अब वह पुनः नहीं पनप सकती अर्थात् स्वयं का अहंभाव सदा के लिए जाता रहा। अब वह पुनः पल्लवित न हो सकेगा।

गुरु दाधा चेला जला, बिहरा लागी आगि।
तिनका बपुरा ऊबरा, गलि पूरे के लागि॥58॥

गुरु ने विरह की आग लगायी। उस आग में चेला जल गया अर्थात् उसके भीतर पूर्ण रूप से विरह की आग व्याप्त हो गई। सामान्यतया आग लगने से तिनका जलकर राख हो जाता है। परन्तु विरह की आग ऐसी होती है, जिससे बेचारे क्षुद्र चेले रूपी तिनके का उद्धार ही हो जाता है, क्योंकि उस विरह से तृण का भस्म से और चेले का पूर्ण से आलिंगन हो जाता है।

अहेड़ी दौ लाइया मिरग पुकारे रोइ।
जा बन में क्रीला करी, दाझत है बन सोइ॥59॥

गुरु रूपी शिकारी शिष्य के मनरूपी देहात्मक वन में ज्ञान-विरह की आग लगता है और वह वासनासक्त जीव रूपी मृग चिल्ला-चिल्लाकर रोता है कि जिस विषय-वासना रूपी वन में भोग कर रहे थे, वह अब जल रहा है,नष्ट हुआ जा रहा है। अर्थात् मृग और आसक्ति-मुक्त जीवन में केवल भेद यह है कि मृग

को वन का मोह बना रहता है, परन्तु आसक्ति-मुक्त जीव को क्षण भर के लिए धक्का-सा तो लगता है, परन्तु बाद में उसे मधुर शांति का अनुभव होता है।

पांनीं मांहीं परजली, भई अपरबल आगि।
बहती सरिता रहि गई, मच्छ रहे जल त्यागि॥60॥

जब गुरु ने ज्ञान-विरह की अग्नि प्रज्ज्वलित की तो प्रबल ज्वाला उठी और विषयासक्त जीव प्रज्ज्वलित हो गया। इन्द्रियों का कार्य समाप्त हो गया और जीवात्मा रूपी मत्स्य ने विषय-वासनामयी जल को त्याग दिया।

:: परचा (परिचय) ::

कबीर तेज अनंत का, मानो सूरज सेनि।
पति संगि जागी सुन्दरी, कौतुक वीठा तेनि॥61॥

कबीर कहते हैं कि परमात्मा की ज्योति इतनी शक्तिशाली है मानों सूर्य की श्रेणी उदय हुई हो। परन्तु इस ज्योति रूपी ज्ञान का अनुभव सबको नहीं होता। जो व्यक्ति मोह-निद्रा में सोता नहीं रहता, परमात्मा के साथ जागता रहता है, उन्हीं के द्वारा यह रहस्य देखा जाता है।

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है, उनमान।
कहिबे कौ सोभा नहीं, देखे ही परमान॥62॥

परब्रह्म के प्रकाश का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अनुमान, प्रत्यक्ष, उपमान आदि साधन तो मायिक जगत् के हैं। उसका साक्षात्कार इन किसी भी साधनों के क्षेत्र में नहीं है। उसका सौन्दर्य व्याख्यान से परे है। उसका प्रमाण केवल अपरोक्षानुभूति ही है।

हदे छाँड़ि बेहदि गया, हुआ निरन्तर वास।
कवँल जु फूला फूल बिना, को निरखै निज दास॥63॥

कबीर कहते हैं कि मैं ससीम से परे अर्थात् पारकर असीम में पहुँच गया और वहाँ मेरी शाश्वत स्थिति हो गई। वहाँ मैंने अनुभव किया कि बिना किसी फूल के एक कमल खिला हुआ जिसे प्रभु-भक्त के सिवाय भला और कौन देख सकता है ?

अन्तरि कँवल प्रकासिका, ब्रह्म वास तहँ होइ।
मन भँवरा तहँ लुबधिया, जानैगा जन कोइ॥64॥

हृदय के अंतर्मन में कमल अर्थात् ज्योति प्रकाशित हो रहा है। वहाँ ब्रह्म का निवास है। मन रूपी भौंरा उस कमल रूपी ज्योंति पर लुब्ध होकर उसमें विचरण करता रहता है। इस रहस्य को केवल प्रभु का भक्त ही जान सकता है।

सायर नाहीं सीप नहिं, स्वाति बूँद भी नाँहि।
कबीर मोती नीपजै, सुन्नि सिखर गढ़ माँहि॥65॥

कबीर कहते हैं कि वहाँ न तो सागर है न सीप है और न ही स्वाति-बूँद अर्थात् मोती में उत्पन्न होने के जितने संभावित कारण हैं, उनमें से एक भी विद्यमान नहीं है, फिर भी इस शरीर के भीतर सहस्रार में मोती उत्पन्न हो रहा है अर्थात् एक अद्‌भुत ज्योति का साक्षात्कार हो रहा है।

घट माँहैं औघट लह्या, औघट माँहैं घाट।
कहि कबीर परचा भया, गुरू दिखाई बाट॥66॥

कबीर कहते हैं कि गुरु ने मार्ग दर्शन किया। परिणामस्वरूप इस शरीर में ही मैंने एक विकट मार्ग का अनुभव किया और उस विकट मार्ग से ही अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। वहाँ मुझे सत्य का दर्शन अर्थात् साक्षात्कार हुआ।

सूर समाना चाँद मैं, दुहूँ किया घर एक।
मन का चेता तब भया, कछू पूरबला लेख॥67॥

जब सूर्य नाड़ी चन्द्र नाड़ी में समाहित हो जाती है अर्थात् सुषुम्ना में चलने लगती है, तब मन का स्वेच्छित फल मिल जाता है। यह पूर्व जन्म के अच्छे कर्मों का ही परिणाम है।

हद्द छाड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान।
मुनि जन महल न पावहीं, तहाँ किया बिसराम॥68॥

कबीर ने सीमित से आगे बढ़कर असीम को प्राप्त कर लिया है। अब वह शून्य के आनन्द-सागर में अवगाहन कर रहे हैं। जो स्थान बड़े-बड़े मुनियों के लिए भी दुर्लभ है, वहाँ पहुँचकर कबीर पूर्ण विश्राम कर रहे हैं।

देखौ करम कबीर का, कछु पूरब जनम का लेख।
जाका महल न मुनि लहैं सो दोसत किया अलेख॥69॥

कबीर कहते हैं कि यह मेरे किसी पूर्व जन्म के पुण्य का फल है कि जिस स्थान को बड़े-बड़े मुनि नहीं प्राप्त कर सकते हैं, वह मुश्किल लक्ष्य, निराकार सत्ता कबीर के लिए प्रिय के समान प्राप्त है।

मन लागा उनमन्न सौ, गगन पहूँचा जाइ।
चाँद बिहूँना चांदिना, अलख निरंजन राइ॥70॥

मेरा मन एक संकल्प-विकल्पात्मक अवस्था के ऊपर राम के मन में मिल गया। वहाँ मैंने एक विचित्र प्रकाश का अनुभव किया, जो कि बिना चन्द्रमा के

ही चाँदनी जैसा शीतल और स्निग्ध था। मैंने वहीं उस त्रिगुणातीत, निर्गुण, निराकार सत्ता का दर्शन किया है, जो कि स्थूल इन्द्रियों की पहुँच से परे है।

मन लागा उनमन्न सो, उनमन मनहि विलग।
लौंन विलंगा पानियाँ, पानीं लौंन विलग।।71।।

कबीर कहते हैं कि मेरे संकल्प-विकल्पात्मक मन ने अपना स्वभाव छोड़ दिया और राम के मन में उसी प्रकार से सानिध्य हो गया जैसे नमक और जल मिलकर एक हो जाते हैं।

पानी ही तै हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछु कहा न जाइ।।72।।

मानव के भीतर जो साक्षी-चैतन्य है, जो चिन्मात्र है, वह पानी के समान है। वही चिन्मात्र अन्त:करण से परिसीमित होकर चिदाभास का रूप ग्रहण करता है। यह चिदाभास हिम अर्थात् बर्फ के समान है, क्योंकि जल की अपेक्षा में यह स्थूल है। जैसे बर्फ गलकर फिर पानी की अवस्था में आ जाती है, वैसे ही अन्त:करण में जो चिदाभास है, वह फिर लीन होने पर चिन्मात्र हो जाता है अर्थात् जीव ब्रह्म के रूप में आ जाता है।

भली भई जु भै पड्या, गई दसा सब भूलि।
पाला गलि पानी भया, ढुलि मिलिया उस कूलि।।72।।

यह बहुत अच्छा हुआ कि मैं अपनी सांसारिक दशा को भूल गया और वास्तविक स्वरूप में परिणत हो गया। यह वैसे ही है, जैसे हिम परिणत होकर जल हो जाता है और लुढ़क कर किनारे के जल से विलीन हो जाता है।

चौहटै चिंतामणि चढ़ी, हाड़ी मारत हाथि।
मीराँ मुझसू मिहर करि, इब मिलौं न काहू साथि।।73।।

जीवन-यात्रा में मैं उस चौराहे पर पहुँच गया हूँ जहाँ प्रभु से साक्षात्कार हो गया है। परन्तु अंतर्मन में स्थित काम, क्रोध, मोह रूपी डाकू मेरी उस अमूल्य निधि को छीन लेना चाहते हैं। हे दया के सागर मेरे ऊपर दया करो जिससे अब मैं इन सबों के चक्कर में न पड़ूँ।

पंखि उड़ानी गगन कौं, पिण्ड रहा परदेस।
पानी पीया चंचु बिनु, भूलि या यहु देस।।74।।

जीव रूपी पक्षी (हंस) कुण्डलिनी के सहारे सहस्रार तक उड़ गया अर्थात् परमतत्त्व का साक्षात्कार कर लिया और यह भौतिक शरीर अपने स्थान पर यों ही पड़ा रहा, जो कि अब उस जीव के लिए परदेश-सा हो गया है। जब जीव

को परमतत्त्व का अनुभव नहीं था, तब उसके लिए शरीर स्वदेश और परमतत्त्व परदेश था। अब परमतत्त्व स्वदेश हो गया और शरीर परदेश हो गया। उसने इन्द्रियों के बिना ही आनन्द रस का पान किया और सांसारिक दशा को भूल गया अर्थात् इससे अब उसकी आसक्ति जाती रही।

सुरति समानी निरति मैं, अजपा माँहै, जाप।
लेख समानां अलेख मैं, यौं आपा माँहै आप॥75॥

साधना की प्रगति में साधक स्थूल से सूक्ष्म, शब्द से अशब्द, प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष, साकार से निराकार, ससीम से असीम, अहंकार से निरहंकार की ओर बढ़ता चला जाता है और जब वह अशब्द, निराकार, अप्रत्यक्ष और निरहंकार अवस्था पर पहुँचता है, तब उसे ब्रह्म-तत्त्व का वास्तविक दर्शन होता है।

आया था संसार में, देखन कौ बहुत रूप।
कहै कबीरा संत हो, परि गया नजरि अनूप॥76॥

कबीर कहते हैं कि हे संतो ! मैंने संसार में अनेक रूप देखने के लिए जन्म लिया था, परन्तु इन्हीं रूपों के भीतर अनुपम तत्त्व, जो अरूप है, मेरी दृष्टि में पड़ गया अर्थात् मुझे अनुपम तत्त्व का दर्शन हो गया।

धरती गगन पवन नहिं होता, नहिं तोया नहिं तारा।
तब हरि हरि के जन हते, कहै कबीर विचारा॥77॥

कबीर कहते हैं कि सृष्टि के पूर्व पृथ्वी, आकाश, पवन, जल, अग्नि ये पाँचों तत्त्व नहीं थे। उस समय केवल हरि ओर उनके भक्त (जीव), अंशी और अंश ही थे।

जा दिन किरतम नां हता, नहीं हाट नहिं बाट।
हुता कबीरा राम जन, जिन देखा औघट घाट॥78॥

जिस समय यह सृष्टि नहीं थी, संसार रूपी बाजार नहीं था, उस समय केवल रामभक्त आदि गुरु कबीर था, जिसको लक्ष्य तक पहुँचने के कठिन और दुर्गम मार्ग का ज्ञान था।

थिति पाई मन थिर भया, सतगुरु करी सहाइ।
अनिन कथा तनि आचरी, हिरदै त्रिभुवन राइ॥79॥

सद्गुरु की कृपा से मैं तत्त्व में प्रतिष्ठित हो गया और मेरा मन अब स्थिर हो गया है, उसकी चंचलता जाती रही। मेरे भीतर अनन्य चरितार्थ हो गया और हृदय में भगवान त्रिभुवनपति विराजमान हो गए।

हरि संगति सीतल भया मिटी मोह की ताप।
निस बासुरि सुखनिधि लहा, (जब) अंतरिप्रगटा आप।।80।।

अनन्तर में आत्म-दर्शन होने पर प्रभु से तादात्म्य हो गया, मोह की ज्वाला मिट गई और मैं निरन्तर आनन्द-निधि का अनुभव कर रहा हूँ।

तन भीतरि मन मानियाँ, बाहरि कहा न जाइ।
ज्वाला तै फिरि जल भया, बुझी बलंती लाइ।।81।।

दर्शन मात्र होने से मन में पूर्ण निश्चय हो गया, संशय हमेशा के लिए समाप्त हो गया। उस स्थिति का मैं शब्द-व्याखन नहीं कर सकता। मोह की ज्वाला जल में परिणत हो गयी। जलती हुई मोह की आग पूर्ण रूप से बुझ गयी अर्थात् परिचय द्वारा पूर्ण शान्ति आ गयी।

जिनि पाया तिनि सुगहगह्या, रसनाँ लागी स्वादि।
रतन निराला पाइया, जगत ढंढोल्या बादि।।82।।

जिन्होंने परम तत्त्व को प्राप्त किया, उन्होंने पूर्ण रूप से हृदय में प्रतिष्ठित कर लिया है, उसके माधुर्य का उन्होंने पूर्ण रूप से आस्वादन किया। उनको एक अनुपम रत्न मिल गया है। वह अब जगत् में और कुछ ढूँढ़ना व्यर्थ समझते हैं अर्थात् परमार्थ के प्राप्त होने पर अन्य अर्थ की क्या आवश्यकता है ?

कबीर दिल साबित भया, पापा फल समरत्थ।
सायत माँहि ढँढोलता, हीरै पड़ि गया हत्थ।।83।।

कबीर कहते हैं कि मैं भव-सागर में अपने इष्ट को टटोल रहा था। गुरु कृपा से मेरे हाथ हीरा ही आ गया अर्थात् सर्वोत्कृष्ट इष्ट मुझे प्राप्त हो गया। फिर तो मेरा हृदय परिपूर्ण हो गया और मैंने जीवन का सर्व-अर्थकारी परमोत्कृष्ट सम्यक-लक्ष्य प्राप्त कर लिया।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाँहि।
प्रेम गली अति साँकरी, या में दो न समाँहि।।84।।

मनुष्य में जब तक अहम विद्यमान रहता है तब तक प्रभु दर्शन दुर्लभ होता है। अहम मिटते ही प्रभु से मिलन हो जाता है। प्रेम की यह विशेषता है कि यद्यपि यह प्रारम्भ दो में होता है, तथापि जब तक द्वैत बना रहता है, तब तक उसमें परिपूर्णता नहीं आती।

जा कारणि मैं ढूँढ़ता, सनमुख मिलिया आइ।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सक्कौं पाई।।85।।

जिसके दर्शन के लिए मैं परेशान था वह आज मेरे सम्मुख है। परन्तु मैं इस संकोच में पड़ा हूँ कि कितना पाप-पंकिल, क्षुद्र-जीव हूँ और मेरा प्रिय कितना शुभ्र और महान् कि मैं पैर पकड़ने का भी साहस न कर सका।

जा कारणि मैं जाइ था, सोई पाया ठौर।
सोई फिरि आपन भया, जाको कहता और।।86।।

जिसके लिए मैं इधर-उधर भटक रहा था, उसको अपने भीतर ही पा लिया। जिसको मैं अन्य कहता था, अब देखता हूँ कि वही वास्तविक अपना है।

कबीर देखा इक अगम, महिमा कही न जाय।
तेज पुंज पारस धनी, नैननि रहा समाय।।87।।

भाग्योदय हुआ उसका साक्षात्कार हुआ, जो अगम था, जिस तक किसी की पहुँच न थी। उसके गौरव और माहात्म्य का वर्णन असम्भव है। वह ज्योति-पुंज है और अपने स्पर्श से पापी को भी पुण्यात्मा बनाने वाला पारस जैसा सौभाग्य-दायक है। अब वह मेरे नेत्रों में समा गया है अर्थात् मेरी दृष्टि से विलुप्त नहीं होता।

मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।
मुकताहल मुकता चुगैं, अब उड़ि अनत न जाहिं।।88।।

जीव सुषुम्नामार्ग से पहुँचकर शून्य शिखर पर स्थित अमृत कुंड में केलि कर रहा है और आनन्द रूपी मोती स्वच्छन्द रूप से जी भर कर चुग रहा है। इस आनन्द को छोड़कर वह अन्यत्र सांसारिक विषयों की ओर नहीं जा सकता।

गगन गरजि अमृत चुवै, कदली कँवल प्रकास।
तहाँ कबीरा बंदगी, कै कोई निज दास।।89।।

आकाश के गर्जन से वह अनहद नाद जो सहस्रार में नित्य हुआ करता है और वहाँ से अमृत के समान शक्ति का क्षरण होता रहता है। मेरुदण्ड की सुषुम्ना नाड़ी में चक्रों का प्रकाश होता रहता है। कबीर कहते हैं कि इस अपूर्व अनुभूति के प्रत्यक्ष होने पर सिर झुक जाता है अथवा कोई और प्रभु का भक्त हो, जिसे यह अनुभूति हो जाय तो उसका सिर झुक जाएगा।

नींव बिहूनां देहुरा, देह बिहूनां देव।
कबीर तहाँ बिलंबिया, करै अलख की सेव।।90।।

शून्य शिखर तक पहुँचने पर जीव को एक ऐसे दिव्य भाव का दर्शन होता है, जिसका सादृश्य स्थूल जगत् में नहीं मिलता। स्थूल जगत् में सुदृढ़ नीव पर बने हुए ईंट-पत्थर के देवालय में देव का दर्शन होता है, किन्तु वहाँ पर बिना

किसी नींव के देवालय में देव के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होता है और वह देव भी निराकार होता है। कबीर उसका अनुभव कर उसमें रम गया और अलक्ष्य सत् की सेवा में लग गया।

देवल माँहे देहुरी, तिल जेता बिस्तार।
माँहे पाती माँहि जल, माँ है पूजन हार।।91।।

इसी शरीर रूपी देवालय में प्रवेश करने के लिए देहली विद्यमान है, जिसकी परिधि तिल के समान सूक्ष्म है। इस देवालय में बाहर से जल, पत्र आदि नहीं लाया जाता, भीतर ही पत्र है, जल है और पूजनेवाला भी है।

कबीर कँवल प्रकासिया, ऊगा निर्मल सूर।
निसि अँधियारी मिटि गई, बाजे अनहद तूर।।92।।

कबीर कहते हैं कि सहस्रार के प्रकाश का भान हो गया, ज्ञान का सूर्य उदय हो गया, अज्ञान की अँधेरी रात समाप्त हो गई और अनहद नाद की तुरही बजने लगी।

आकासे मुखि औंधा कुआँ, पाताले पनिहारि।
ताका जल कोई हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि।।93।।

गगम-मण्डल में एक सहस्रार रूपी अधोमुख कुआँ है, जिसका मुख नीचे की ओर है, पाताल अर्थात् मूलाधार चक्र में पनिहारिन रूपी कुण्डलिनी स्थित है। जब साधना द्वारा वह सुषुम्ना मार्ग से होकर सहस्रार में पहुँचती है, तब शुद्ध जीव उसके अमृत-जल को पीने में समर्थ होता है। इस मूलतत्त्व पर किसी बिरले ने ही विचार किया है अर्थात् इसे कोई बिरला ही समझता है।

सिव सक्ति दिसि को जुवै, पछिम दिसा उठै धूरि।
जल में सिंह जु घर करै, मछली चढ़ै खजूरि।।94।।

सिद्धों, नाथ योगियों और कबीर में 'सक्ति' इड़ा का प्रतीक है और 'सिव' पिंगला का। जब मछली रूपी कुण्डलिनी ऊपर सहस्रार तक पहुँच जाती है, तब सिंह रूपी जीव मानसरोवर में अवगाहन करने लगता है। अर्थात् कुण्डलिनी का जागरण तभी संभव होता है, जब इड़ा-पिंगला में स्थित प्राण-अपान वायु तुल्यबल हो जायँ। किन्तु कोई ऐसा विरला ही जीव है, जो इस मार्ग का अनुसंधान कर सकता है।

अमृत बरिसै हीरा निपजै, घंटा पड़ै टकसाल।
कबीर जुलाहा भया पारखी, अनुभौ उतर्या पार।।95।।

कबीर कहते हैं कि जब शुद्ध अनहद नाद का परिचय हो जाता है, तब संकल्प-विकल्पात्मक मन उसी में लय को प्राप्त हो जाता है। हमने उसका परिचय प्राप्त कर लिया है और अपने अनुभव से भव-सागर के पार उतर गये हैं।

ममता मेरा क्या करै, प्रेम उघारी पौलि।
दरसन भया दयाल का, सूल भई सुख सौलि॥96॥

प्रभु प्रेम ने रहस्य का द्वार खोल दिया। इससे मुझको दयामय प्रभु का दर्शन हो गया। अब ममता मेरा क्या बिगाड़ सकती है? अहं और मम का भाव ही समाप्त हो गया है और भव का कष्ट सुख की चादर बन गया अर्थात् सभी दु:ख आनन्द में परिणत हो गए।

:: लाँबि ::

हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ।
बूँद समानी समुंद मैं, सो कत हैरी जाइ॥97॥

जैसे बूँद समुद्र को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जब उसमें मिल जाती है, तब उसका पृथक् अस्तित्त्व नहीं रह जाता है। वैसे ही परम को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मेरा अहं उसी में खो गया और उसका पृथक् अस्तित्त्व समाप्त हो गया। अर्थात् यह जीव जो पहले नाम-रूप को लेकर 'अहं' बना हुआ था, अब प्रभु की खोज में चलते-चलते नाम-रूप से पृथक् होकर प्रभु से तादात्म्य प्राप्त कर लिया है।

हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ।
समुंद समाना बूँद मैं, सो कत हेर्या जाइ॥98॥

कबीर कहते हैं कि हे भाई सन्तो ! प्रभु को खोजते-खोजते मैं स्वयं खो गया। समुद्र (अंशी) ने बूँद (अंश) को आत्मसात् कर लिया। अब उस बूँद का पृथक् अस्तित्त्व कैसे खोजा जा सकता है ? अर्थात् एक बार प्रभु से आत्मसात् होने के पश्चात् उससे विरक्त नहीं हुआ जा सकता।

4

तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास हिंदी साहित्य के महान कवि थे। इन्हें आदि काव्य रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि का अवतार भी माना जाता है। इनकी रचना श्रीरामचरितमानस का कथानक रामायण से लिया गया है। रामचरितमानस लोक ग्रन्थ है और इसे उत्तर भारत में बड़े भक्तिभाव से पढ़ा जाता है। इसके बाद विनय पत्रिका उनका एक अन्य महत्त्वपूर्ण काव्य है। महाकाव्य श्रीरामचरितमानस को विश्व के 100 सर्वश्रेष्ठ लोकप्रिय काव्यों में 46वाँ स्थान दिया गया।

जन्म

अधिकांश विद्वान तुलसीदास का जन्म स्थान राजापुर को मानने के पक्ष में हैं। यद्यपि कुछ इसे सोरों शूकरक्षेत्र भी मानते हैं। राजापुर उत्तर प्रदेश के चित्रकूट जिला के अंतर्गत स्थित एक गाँव है। वहाँ पं. आत्माराम शुक्ल एवं हुलसी के पुत्र का नाम महाकवि गोस्वामी तुलसीदास था, जिन्होंने श्रीरामचरितमानस महाग्रंथ की रचना की थी। नंददास जी के छोटे भाई का नाम चँदहास था। नंददास जी, तुलसीदास जी के सगे चचेरे भाई थे। नंददास जी के पुत्र का नाम कृष्णदास था। नंददास ने कई रचनाएँ-रसमंजरी, अनेकार्थमंजरी, भागवत-दशम स्कंध, श्याम सगाई, गोवर्द्धन लीला, सुदामा चरित, विरहमंजरी, रूप मंजरी, रुक्मिणी मंगल, रासपंचाध्यायी, भँवर गीत, सिद्धांत पंचाध्यायी, नंददास पदावली रचीं। ब्राह्मण रहते थे। संवत् 1511 के श्रावण मास के शुक्लपक्ष की सप्तमी

तिथि के दिन अभुक्त मूल नक्षत्र में तुलसीदास का जन्म हुआ। प्रचलित जनश्रुति के अनुसार शिशु बारह महीने तक माँ के गर्भ में रहने के कारण अत्यधिक हृष्ट पुष्ट था और उसके मुख में दाँत दिखायी दे रहे थे। जन्म लेने के साथ ही उसने राम नाम का उच्चारण किया, जिससे उसका नाम रामबोला पड़ गया। उनके जन्म के दूसरे ही दिन माँ का निधन हो गया। पिता ने किसी और अनिष्ट से बचने के लिये बालक को चुनियाँ नाम की एक दासी को सौंप दिया और स्वयं विरक्त हो गये। जब रामबोला साढे पाँच वर्ष का हुआ तो चुनियाँ भी नहीं रही। वह गली-गली भटकता हुआ अनाथों की तरह जीवन जीने को विवश हो गया।

बचपन

भगवान शंकरजी की प्रेरणा से रामशैल पर रहनेवाले श्री अनन्तानन्द जी के प्रिय शिष्य श्रीनरहर्यानन्द जी (नरहरि बाबा) ने रामबोला के नाम से बहुचर्चित हो चुके इस बालक को ढूँढ़ निकाला और विधिवत् उसका नाम तुलसीराम रखा। तदुपरान्त वे उसे अयोध्या (उत्तर प्रदेश) ले गये और वहाँ संवत् 1561 माघ शुक्ला पंचमी (शुक्रवार) को उसका यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न कराया। संस्कार के समय भी बिना सिखाये ही बालक रामबोला ने गायत्री-मन्त्र का स्पष्ठ उच्चारण किया, जिसे देखकर सब लोग चकित हो गये। इसके बाद नरहरि बाबा ने वैष्णवों के पाँच संस्कार करके बालक को राम-मन्त्र की दीक्षा दी और अयोध्या में ही रहकर उसे विद्याध्ययन कराया। बालक रामबोला की बुद्धि बड़ी प्रखर थी। वह एक ही बार में गुरु-मुख से जो सुन लेता, उसे कंठस्थ हो जाता। वहाँ से कुछ काल के बाद गुरु-शिष्य दोनों शूकरक्षेत्र (सोरों) पहुँचे। वहाँ नरहरि बाबा ने बालक को राम-कथा सुनायी किन्तु वह उसे भली-भाँति समझ न आयी।

ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी, गुरुवार, संवत् 1583 को 29 वर्ष की आयु में राजापुर से थोड़ी ही दूर यमुना के उस पार स्थित एक गाँव की अति सुन्दरी भारद्वाज गोत्र की कन्या रत्नावली के साथ उनका विवाह हुआ। चूँकि गौना नहीं हुआ था अतः कुछ समय के लिये वे काशी चले गये और वहाँ शेषसनातन जी के पास रहकर वेद-वेदांग के अध्ययन में जुट गये। वहाँ रहते हुए अचानक एक दिन उन्हें अपनी पत्नी की याद आयी और वे व्याकुल होने लगे। जब नहीं रहा गया तो गुरूजी से आज्ञा लेकर वे अपनी जन्मभूमि राजापुर लौट आये। पत्नी रत्नावली चूँकि मायके में ही थी क्योंकि तब तक उनका

गौना नहीं हुआ था, अतः तुलसीराम ने भयंकर अँधेरी रात में उफनती यमुना नदी तैरकर पार की और सीधे अपनी पत्नी के शयन-कक्ष में जा पहुँचे। रत्नावली इतनी रात गये अपने पति को अकेले आया देख कर आश्चर्यचकित हो गयी। उसने लोक-लज्जा के भय से जब उन्हें चुपचाप वापस जाने को कहा तो वे उससे उसी समय घर चलने का आग्रह करने लगे। उनकी इस अप्रत्याशित जिद से खीझकर रत्नावली ने स्वरचित एक दोहे के माध्यम से जो शिक्षा उन्हें दी उसने ही तुलसीराम को तुलसीदास बना दिया। रत्नावली ने जो दोहा कहा था वह इस प्रकार है–

अस्थि चर्म मय देह यह, ता सों ऐसी प्रीति !
नेकु जो होती राम से, तो काहे भव-भीति ?

यह दोहा सुनते ही उन्होंने उसी समय पत्नी को वहीं उसके पिता के घर छोड़ दिया और वापस अपने गाँव राजापुर लौट गये। राजापुर में अपने घर जाकर जब उन्हें यह पता चला कि उनकी अनुपस्थिति में उनके पिता भी नहीं रहे और पूरा घर नष्ट हो चुका है तो उन्हें और भी अधिक कष्ट हुआ। उन्होंने विधि-विधान पूर्वक अपने पिता जी का श्राद्ध किया और गाँव में ही रहकर लोगों को भगवान राम की कथा सुनाने लगे।

भगवान श्री राम जी से भेंट

कुछ काल राजापुर रहने के बाद वे पुनः काशी चले गये और वहाँ की जनता को राम-कथा सुनाने लगे। कथा के दौरान उन्हें एक दिन मनुष्य के वेश में एक प्रेत मिला, जिसने उन्हें हनुमान जी का पता बतलाया। हनुमान जी से मिलकर तुलसीदास ने उनसे श्रीरघुनाथजी का दर्शन कराने की प्रार्थना की। हनुमानजी ने कहा-'तुम्हें चित्रकूट में रघुनाथजी के दर्शन होंगें।' इस पर तुलसीदास जी चित्रकूट की ओर चल पड़े।

चित्रकूट पहुँच कर उन्होंने रामघाट पर अपना आसन जमाया। एक दिन वे प्रदक्षिणा करने निकले ही थे कि यकायक मार्ग में उन्हें श्रीराम के दर्शन हुए। उन्होंने देखा कि दो बड़े ही सुन्दर राजकुमार घोड़ों पर सवार होकर धनुष-बाण लिये जा रहे हैं। तुलसीदास उन्हें देखकर आकर्षित तो हुए, परन्तु उन्हें पहचान न सके। तभी पीछे से हनुमानजी ने आकर जब उन्हें सारा भेद बताया तो वे पश्चाताप करने लगे। इस पर हनुमानजी ने उन्हें सात्वना दी और कहा प्रातःकाल फिर दर्शन होंगे।

संवत् 1607 की मौनी अमावस्या को बुधवार के दिन उनके सामने भगवान श्रीराम जी पुनः प्रकट हुए। उन्होंने बालक रूप में आकर तुलसीदास से कहा-'बाबा! हमें चन्दन चाहिये' क्या आप हमें चन्दन दे सकते हैं?' हनुमान जी ने सोचा, कहीं वे इस बार भी धोखा न खा जायें, इसलिये उन्होंने तोते का रूप धारण करके यह दोहा कहा:

चित्रकूट के घाट पर, भइ सन्तन की भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसें, तिलक देत रघुबीर॥

तुलसीदास भगवान श्री राम जी की उस अद्‌भुत छवि को निहार कर अपने शरीर की सुध-बुध ही भूल गये। अन्ततोगत्वा भगवान ने स्वयं अपने हाथ से चन्दन लेकर अपने तथा तुलसीदास जी के मस्तक पर लगाया और अन्तर्ध्यान हो गये।

संस्कृत में पद्य-रचना

संवत् 1628 में वह हनुमान जी की आज्ञा लेकर अयोध्या की ओर चल पड़े। उन दिनों प्रयाग में माघ मेला लगा हुआ था। वे वहाँ कुछ दिन के लिये ठहर गये। पर्व के छः दिन बाद एक वटवृक्ष के नीचे उन्हें भारद्वाज और याज्ञवल्क्य मुनि के दर्शन हुए। वहाँ उस समय वही कथा हो रही थी, जो उन्होने सूकरक्षेत्र में अपने गुरु से सुनी थी। माघ मेला समाप्त होते ही तुलसीदास जी प्रयाग से पुनः वापस काशी आ गये और वहाँ के प्रह्लादघाट पर एक ब्राह्मण के घर निवास किया। वहीं रहते हुए उनके अन्दर कवित्व-शक्ति का प्रस्फुरण हुआ और वे संस्कृत में पद्य-रचना करने लगे। परन्तु दिन में वे जितने पद्य रचते, रात्रि में वे सब लुप्त हो जाते। यह घटना रोज घटती। आठवें दिन तुलसीदास जी को स्वप्न हुआ। भगवान शंकर ने उन्हें आदेश दिया कि तुम अपनी भाषा में काव्य रचना करो। तुलसीदास जी की नींद उचट गयी। वे उठकर बैठ गये। उसी समय भगवान शिव और पार्वती उनके सामने प्रकट हुए। तुलसीदास जी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। इस पर प्रसन्न होकर शिव जी ने कहा-'तुम अयोध्या में जाकर रहो और हिन्दी में काव्य-रचना करो। मेरे आशीर्वाद से तुम्हारी कविता सामवेद के समान फलवती होगी।' इतना कहकर गौरीशंकर अन्तर्धान हो गये। तुलसीदास जी उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर काशी से सीधे अयोध्या चले गये।

रामचरितमानस की रचना

संवत् 1631 का प्रारम्भ हुआ। दैवयोग से उस वर्ष रामनवमी के दिन वैसा ही योग आया जैसा त्रेतायुग में राम-जन्म के दिन था। उस दिन प्रातःकाल तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस की रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष, सात महीने और छब्बीस दिन में यह अद्‌भुत ग्रन्थ सम्पन्न हुआ। संवत् 1633 के मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में राम-विवाह के दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गये।

इसके बाद भगवान की आज्ञा से तुलसीदास जी काशी चले आये। वहाँ उन्होंने भगवान विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा को श्रीरामचरितमानस सुनाया। रात को पुस्तक विश्वनाथ-मन्दिर में रख दी गयी। प्रातःकाल जब मन्दिर के पट खोले गये तो पुस्तक पर लिखा हुआ पाया गया-सत्यं शिवं सुन्दरम् जिसके नीचे भगवान शंकर की सही (पुष्टि) थी। उस समय वहाँ उपस्थित लोगों ने 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की आवाज भी कानों से सुनी।

इधर काशी के पण्डितों को जब यह बात पता चली तो उनके मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वे दल बनाकर तुलसीदास जी की निन्दा और उस पुस्तक को नष्ट करने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने पुस्तक चुराने के लिये दो चोर भी भेजे। चोरों ने जाकर देखा कि तुलसीदास जी की कुटी के आसपास दो युवक धनुषबाण लिये पहरा दे रहे हैं। दोनों युवक बड़े ही सुन्दर क्रमशः श्याम और गौर वर्ण के थे। उनके दर्शन करते ही चोरों की बुद्धि शुद्ध हो गयी। उन्होंने उसी समय से चोरी करना छोड़ दिया और भगवान के भजन में लग गये। तुलसीदास जी ने अपने लिये भगवान को कष्ट हुआ जान कुटी का सारा सम्मान लुटा दिया और पुस्तक अपने मित्र टोडरमल (अकबर के नौरत्नों में एक) के यहाँ रखवा दी। इसके बाद उन्होंने अपनी विलक्षण स्मरण शक्ति से एक दूसरी प्रति लिखी। उसी के आधार पर दूसरी प्रतिलिपियाँ तैयार की गयीं और पुस्तक का प्रचार दिनों-दिन बढ़ने लगा।

इधर काशी के पण्डितों ने और कोई उपाय न देख श्री मधुसूदन सरस्वती नाम के महापण्डित को उस पुस्तक को देखकर अपनी सम्मति देने की प्रार्थना की। मधुसूदन सरस्वती जी ने उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और उस पर अपनी ओर से यह टिप्पणी लिख दी-

आनन्दकानने ह्यास्मिंजंगमस्तुलसीतरुः।
कवितामंजरी भाति रामभ्रमरभूषिता॥

इसका हिन्दी में अर्थ इस प्रकार है-'काशी के आनन्द-वन में तुलसीदास साक्षात् चलता-फिरता तुलसी का पौधा है। उसकी काव्य-मंजरी बड़ी ही मनोहर है, जिस पर श्रीराम रूपी भँवरा सदा मँडराता रहता है।'

पण्डितों को उनकी इस टिप्पणी पर भी संतोष नहीं हुआ। तब पुस्तक की परीक्षा का एक अन्य उपाय सोचा गया। काशी के विश्वनाथ-मन्दिर में भगवान विश्वनाथ के सामने सबसे ऊपर वेद, उनके नीचे शास्त्र, शास्त्रों के नीचे पुराण और सबके नीचे रामचरितमानस रख दिया गया। प्रात:काल जब मन्दिर खोला गया तो लोगों ने देखा कि श्रीरामचरितमानस वेदों के ऊपर रखा हुआ है। अब तो सभी पण्डित बड़े लज्जित हुए। उन्होंने तुलसीदास जी से क्षमा माँगी और भक्ति-भाव से उनका चरणोदक लिया।

मृत्यु

तुलसीदास जी जब काशी के विख्यात् घाट असीघाट पर रहने लगे तो एक रात कलियुग मूर्त रूप धारण कर उनके पास आया और उन्हें पीड़ा पहुँचाने लगा। तुलसीदास जी ने उसी समय हनुमान जी का ध्यान किया। हनुमान जी ने साक्षात् प्रकट होकर उन्हें प्रार्थना के पद रचने को कहा, इसके पश्चात् उन्होंने अपनी अन्तिम कृति विनय-पत्रिका लिखी और उसे भगवान के चरणों में समर्पित कर दिया। श्रीराम जी ने उस पर स्वयं अपने हस्ताक्षर कर दिये और तुलसीदास जी को निर्भय कर दिया।

संवत् 1680 में श्रावण कृष्ण तृतीया शनिवार को तुलसीदास जी ने 'राम-राम' कहते हुए अपना शरीर परित्याग किया।

तुलसी-स्तवन

तुलसीदास जी की हस्तलिपि अत्यधिक सुन्दर थी। लगता है, जैसे उस युग में उन्होंने कैलोग्राफी की कला आती थी। उनके जन्म-स्थान राजापुर के एक मन्दिर में श्रीरामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड की एक प्रति सुरक्षित रखी हुई है। उसी प्रति के साथ रखे हुए एक कवि मदनलाल वर्मा 'क्रान्त' की हस्तलिपि में तुलसी के व्यक्तित्त्व व कृतित्त्व को रेखांकित करते हुए निम्नलिखित दो छन्द भी उल्लेखनीय हैं, जिन्हें हिन्दी अकादमी दिल्ली की पत्रिका इन्द्रप्रस्थ भारती ने सर्वप्रथम प्रकाशित किया था। इनमें पहला छन्द सिंहावलोकन है, जिसकी विशेषता यह है कि प्रत्येक चरण जिस शब्द से समाप्त होता है, उससे आगे का

उसी से प्रारम्भ होता है। प्रथम व अन्तिम शब्द भी एक ही रहता है। काव्यशास्त्र में इसे अद्‌भुत छन्द कहा गया है। यही छन्द एक अन्य पत्रिका साहित्यपरिक्रमा के तुलसी जयन्ती विशेषांक में भी प्रकाशित हुए थे वहीं से उद्धृत किये गये हैं

तुलसी ने मानस लिखा था जब जाति-पाँति-सम्प्रदाय-ताप से धरम-धरा झुलसी।

झुलसी धरा के तृण-संकुल पे मानस की पावसी-फुहार से हरीतिमा-सी हुलसी।

हुलसी हिये में हरि-नाम की कथा अनन्त सन्त के समागम से फूली-फली कुल-सी।

कुल-सी लसी जो प्रीति राम के चरित्र में तो राम-रस जग को चखाय गये तुलसी।

आत्मा थी राम की पिता में सो प्रताप-पुन्ज आप रूप गर्भ में समाय गये तुलसी।

जन्मते ही राम-नाम मुख से उचारि निज नाम रामबोला रखवाय गये तुलसी।

रत्नावली-सी अर्द्धांगिनी सों सीख पाय राम सों प्रगाढ़ प्रीति पाय गये तुलसी।

मानस में राम के चरित्र की कथा सुनाय राम-रस जग को चखाय गये तुलसी।

तुलसीदास की रचनाएँ

अपने 126 वर्ष के दीर्घ जीवन-काल में तुलसीदास ने कालक्रमानुसार निम्नलिखित कालजयी ग्रन्थों की रचनाएँ कीं -

रामललानहछू, वैराग्यसंदीपनी, रामाज्ञाप्रश्न, जानकी-मंगल, रामचरितमानस, सतसई, पार्वती-मंगल, गीतावली, विनय-पत्रिका, कृ,ष्ण-गीतावली, बरवै रामायण, दोहावली और कवितावली।

इनमें से रामचरितमानस, विनय-पत्रिका, कवितावली, गीतावली जैसी कृतियों के विषय में किसी कवि की यह आर्षवाणी सटीक प्रतीत होती है-पश्य देवस्य काव्यं, न मृणोति न जीर्यति। अर्थात् देवपुरुषों का काव्य देखिये जो न मरता न पुराना होता है।

लगभग चार सौ वर्ष पूर्व तुलसीदास जी ने अपनी कृतियों की रचना की थी। आधुनिक प्रकाशन-सुविधाओं से रहित उस काल में भी तुलसीदास का काव्य जन-जन तक पहुँच चुका था। यह उनके कवि रूप में लोकप्रिय होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है। मानस जैसे वृहद् ग्रन्थ को कण्ठस्थ करके सामान्य पढ़े लिखे लोग भी अपनी शुचिता एवं ज्ञान के लिए प्रसिद्ध होने लगे थे।

रामचरितमानस तुलसीदास जी का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ रहा है। उन्होंने अपनी रचनाओं के सम्बन्ध में कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है, इसलिए प्रामाणिक रचनाओं के सम्बन्ध में अन्त:साक्ष्य का अभाव दिखायी देता है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ इस प्रकार हैं:-

रामचरितमानस,
रामललानहछू,
वैराग्य-संदीपनी,
बरवै रामायण,
पार्वती-मंगल,
जानकी-मंगल,
रामाज्ञाप्रश्न,
दोहावली,
कवितावली,
गीतावली,
श्रीकृष्ण-गीतावली,
विनय-पत्रिका,
सतसई,
छंदावली रामायण,
कुंडलिया रामायण,
राम शलाका,
संकट मोचन,
करखा रामायण,
रोला रामायण,
झूलना,
छप्पय रामायण,
कवित्त रामायण,

कलिधर्माधर्म निरूपण।

हनुमान चालीसा

'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एंड एथिक्स' में **ग्रियर्सन** ने भी उपरोक्त प्रथम बारह ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

कुछ ग्रंथों का संक्षिप्त विवरण

रामललानहछू

यह संस्कार गीत है। इस गीत में कतिपय उल्लेख राम-विवाह की कथा से भिन्न हैं।

गोद लिहैं कौशल्या बैठि रामहिं वर हो।
सोभित दूलह राम सीस, पर आंचर हो॥

वैराग्य संदीपनी

वैराग्य संदीपनी को **माताप्रसाद गुप्त** ने अप्रामाणिक माना है, पर **आचार्य चंद्रवली पांडे** इसे प्रामाणिक और तुलसी की आरंभिक रचना मानते हैं। कुछ और प्राचीन प्रतियों के उपलब्ध होने से ठोस प्रमाण मिल सकते हैं। संत महिमा वर्णन का पहला सोरठा पेश है –

को बरनै मुख एक, तुलसी महिमा संत।
जिन्हके विमल विवेक, सेष महेस न कहि सकत॥

बरवै रामायण

विद्वानों ने इसे तुलसी की रचना घोषित किया है। शैली की दृष्टि से यह तुलसीदास की प्रामाणिक रचना है। इसकी खंडित प्रति ही ग्रंथावली में संपादित है।

पार्वती-मंगल

यह तुलसी की प्रामाणिक रचना प्रतीत होती है। इसकी काव्यात्मक प्रौढ़ता तुलसी सिद्धांत के अनुकूल है। कविता सरल, सुबोध रोचक और सरस है। 'जगत मातु पितु संभु भवानी' की शृंगारिक चेष्टाओं का तनिक भी पुट नहीं है। लोक

रीति इतनी यथास्थिति से चित्रित हुई है कि यह संस्कृत के शिव काव्य से कम प्रभावित है और तुलसी की मति की भक्तयात्मक भूमिका पर विरचित कथा काव्य है। व्यवहारों की सुष्ठुता, प्रेम की अनन्यता और वैवाहिक कार्यक्रम की सरसता को बड़ी सावधानी से कवि ने अंकित किया है। तुलसीदास अपनी इस रचना से अत्यन्त संतुष्ट थे, इसीलिए इस अनासक्त भक्त ने केवल एक बार अपनी मति की सराहना की है –

प्रेम पाट पटडोरि गौरि-हर-गुन मनि।
मंगल हार रचेउ कवि मति मृगलोचनि॥

जानकी-मंगल

विद्वानों ने इसे तुलसीदास की प्रामाणिक रचनाओं में स्थान दिया है। पर इसमें भी क्षेपक है।

पंथ मिले भृगुनाथ हाथ फरसा लिए।
डाँटहि आँखि देखाइ कोप दारुन किए॥
राम कीन्ह परितोष रोस रिस परिहरि।
चले सौंपि सारंग सुफल लोचन करि॥
रघुबर भुजबल देख उछाह बरातिन्ह।
मुदित राउ लखि सन्मुख विधि सब भाँतिन्ह॥

तुलसी के मानस के पूर्व वाल्मीकीय रामायण की कथा ही लोक प्रचलित थी। काशी के पंडितों से मानस को लेकर तुलसीदास का मतभेद और मानस की प्रति पर विश्वनाथ के हस्ताक्षर संबंधी जनश्रुति प्रसिद्ध है।

रामाज्ञा प्रश्न

यह ज्योतिष शास्त्रीय पद्धति का ग्रंथ है। दोहों, सप्तकों और सर्गों में विभक्त यह ग्रंथ रामकथा के विविध मंगल एवं अमंगलमय प्रसंगों की मिश्रित रचना है। काव्य की दृष्टि से इस ग्रंथ का महत्त्व नगण्य है। सभी इसे तुलसीकृत मानते हैं। इसमें कथाशृंखला का अभाव है और वाल्मीकीय रामायण के प्रसंगों का अनुवाद अनेक दोहों में है।

दोहावली

दोहावली में अधिकांश दोहे मानस के हैं। कवि ने चातक के व्याज से दोहों की एक लंबी शृंखला लिखकर भक्ति और प्रेम की व्याख्या की है।

दोहावली दोहा संकलन है। मानस के भी कुछ कथा निरपेक्ष दोहों को इसमें स्थान है। संभव है कुछ दोहे इसमें भी प्रक्षिप्त हों, पर रचना की अप्रामाणिकता असंदिग्ध है।

कवितावली

कवितावली तुलसीदास की रचना है, पर सभा संस्करण अथवा अन्य संस्करणों में प्रकाशित यह रचना पूरी नहीं प्रतीत होती है। कवितावली एक प्रबंध रचना है। कथानक में अप्रासंगिकता एवं शिथिलता तुलसी की कला का कलंक कहा जायेगा।

गीतावली

गीतावली में गीतों का आधार विविध कांड का रामचरित ही रहा है। यह ग्रंथ रामचरितमानस की तरह व्यापक जनसम्पर्क में कम गया प्रतीत होता है। इसलिए इन गीतों में परिवर्तन-परिवर्द्धन दृष्टिगत नहीं होता है। गीतावली में गीतों के कथा-संदर्भ तुलसी की मति के अनुरूप हैं। इस दृष्टि से गीतावली का एक गीत लिया जा सकता है -

कैकेयी जौ लौं जियत रही।
तौ लौं बात मातु सों मुह भरि भरत न भूलि कही॥
मानी राम अधिक जननी ते जननिहु गँसन गही।
सीय लखन रिपुदवन राम-रुख लखि सबकी निबही॥
लोक-बेद-मरजाद दोष गुन गति चित चखन चही।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम सनेह सही॥

इसमें भरत और राम के शील का उत्कर्ष तुलसीदास ने व्यक्त किया है। गीतावली के उत्तरकांड में मानस की कथा से अधिक विस्तार है। इसमें सीता का वाल्मीकि आश्रम में भेजा जाना वर्णित है। इस परित्याग का औचित्य निर्देश इन पंक्तियों में मिलता है -

भोग पुनि पितु-आयु को, सोउ किए बनै बनाउ।
परिहरे बिनु जानकी नहीं और अनघ उपाउ॥
पालिबे असिधार-ब्रत प्रिय प्रेम-पाल सुभाउ।
होइ हित केहि भांति, नित सुविचारु नहिं चित चाउ॥

श्रीकृष्ण गीतावली

श्रीकृष्ण गीतावली भी गोस्वामीजी की रचना है। श्रीकृष्ण-कथा के कतिपय प्रकरण गीतों के विषय हैं।

हनुमान बाहुक

यह गोस्वामी जी की हनुमत-भक्ति संबंधी रचना है। पर यह एक स्वतंत्र रचना है। इसके सभी अंश प्रामाणिक प्रतीत होते हैं।

तुलसीदास को राम प्यारे थे, राम की कथा प्यारी थी, राम का रूप प्यारा था और राम का स्वरूप प्यारा था। उनकी बुद्धि, राग, कल्पना और भावुकता पर राम की मर्यादा और लीला का आधिपत्य था। उनकी आंखों में राम की छवि बसती थी। सब कुछ राम की पावन लीला में व्यक्त हुआ है, जो रामकाव्य की परम्परा की उच्चतम उपलब्धि है। निर्दिष्ट ग्रंथों में इसका एक रस प्रतिबिंब है।

5

सूरदास

सूरदास कवियों में सर्वोपरि है। हिन्दी साहित्य में भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक और ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि महात्मा सूरदास हिंदी साहित्य, के सूर्य, माने जाते हैं।

जीवन परिचय

सूरदास का जन्म 1540(वि. स.) में रुनकता नामक गाँव में हुआ। यह गाँव मथुरा-आगरा मार्ग के किनारे स्थित है। कुछ विद्वानों का मत है कि सूर का जन्म सीही नामक ग्राम में एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वह बहुत विद्वान थे, उनकी लोग आज भी चर्चा करते है। सूरदास के पिता, रामदास गायक थे। प्रारंभ में सूरदास आगरा के समीप गऊघाट पर रहते थे। वहीं उनकी भेंट श्री वल्लभाचार्य से हुई और वे उनके शिष्य बन गए। वल्लभाचार्य ने उनको पुष्टिमार्ग में दीक्षित कर के कृष्णलीला के पद गाने का आदेश दिया। सूरदास की मृत्यु गोवर्धन के निकट पारसौली ग्राम में 1580 ईस्वी में हुई।

सूरदास की जन्मतिथि एवं जन्मस्थान के विषय में मतभेद

सूरदास की जन्मतिथि एवं जन्मस्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद है। 'साहित्य लहरी' सूर की लिखी रचना मानी जाती है। इसमें साहित्य लहरी के रचना-काल के सम्बन्ध में निम्न पद मिलता है -

मुनि पुनि के रस लेख।
दसन गौरीनन्द को लिखि सुवल संवत् पेख॥

इसका अर्थ संवत् 1607 ईस्वी में माना गया है, अतएव 'साहित्य लहरी' का रचना काल संवत् 1607 वि. है। इस ग्रन्थ से यह भी प्रमाण मिलता है कि सूर के गुरु श्री वल्लभाचार्य थे।

सूरदास का जन्म सं. 1540 ईस्वी के लगभग ठहरता है, क्योंकि बल्लभ सम्प्रदाय में ऐसी मान्यता है कि बल्लभाचार्य सूरदास से दस दिन बड़े थे और बल्लभाचार्य का जन्म उक्त संवत् की वैशाख् कृष्ण एकादशी को हुआ था। इसलिए सूरदास की जन्म-तिथि वैशाख शुक्ला पंचमी, संवत् 1535 वि. समीचीन जान पड़ती है। अनेक प्रमाणों के आधार पर उनका मृत्यु संवत् 1620 से 1648 ईस्वी के मध्य स्वीकार किया जाता है। **रामचन्द्र शुक्ल जी** के मतानुसार सूरदास का जन्म संवत् 1540 वि. के सन्निकट और मृत्यु संवत् 1620 ईस्वी के आसपास माना जाता है।

'श्री गुरु बल्लभ तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो।'

सूरदास की आयु 'सूरसारावली' के अनुसार उस समय 67 वर्ष थी। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के आधार पर उनका जन्म रुनकता अथवा रेणु का क्षेत्र (वर्तमान जिला आगरान्तर्गत) में हुआ था। मथुरा और आगरा के बीच गऊघाट पर ये निवास करते थे। बल्लभाचार्य से इनकी भेंट वहीं पर हुई थी। 'भावप्रकाश' में सूर का जन्म स्थान सीही नामक ग्राम बताया गया है। वे सारस्वत ब्राह्मण थे और जन्म के अंधे थे। 'आइने अकबरी' में (संवत् 1653 ईस्वी) तथा 'मुतखबुत-तवारीख' के अनुसार सूरदास को अकबर के दरबारी संगीतज्ञों में माना है।

क्या सूरदास जन्मान्ध थे?

सूरदास श्रीनाथ की 'संस्कृतवार्ता मणिमाला', श्री हरिराय कृत 'भाव-प्रकाश', श्री गोकुलनाथ की 'निजवार्ता' आदि ग्रन्थों के आधार पर, जन्म के अन्धे माने गए हैं। लेकिन राधा-कृष्ण के रूप सौन्दर्य का सजीव चित्रण, नाना रंगों का वर्णन, सूक्ष्म पर्यवेक्षणशीलता आदि गुणों के कारण अधिकतर वर्तमान विद्वान सूर को जन्मान्ध स्वीकार नहीं करते।

श्यामसुन्दर दास ने इस सम्बन्ध में लिखा है-'सूर वास्तव में जन्मान्ध नहीं थे, क्योंकि शृंगार तथा रंग-रूपादि का जो वर्णन उन्होंने किया है वैसा कोई

जन्मान्ध नहीं कर सकता। डॉक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी, ने लिखा है-'सूरसागर के कुछ पदों से यह ध्वनि अवश्य निकलती है कि सूरदास अपने को जन्म का अन्धा और कर्म का अभागा कहते हैं, पर सब समय इसके अक्षरार्थ को ही प्रधान नहीं मानना चाहिए।'

रचनाएँ

सूरदास जी द्वारा लिखित पाँच ग्रन्थ बताए जाते हैं–

(1) सूरसागर-यह सूरदास की प्रसिद्ध रचना है, इसमें सवा लाख पद संग्रहित थे। किंतु अब सात-आठ हजार पद ही मिलते हैं।
(2) सूरसारावली,
(3) साहित्य-लहरी-जिसमें उनके कूट पद संकलित हैं,
(4) नल-दमयन्ती,
(5) ब्याहलो,
(6) 'पद संग्रह' दुर्लभ पद,
(7) gramarmgeet,

उपरोक्त में अन्तिम दो अप्राप्य हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित पुस्तकों की विवरण तालिका में सूरदास के 16 ग्रन्थों का उल्लेख है। इनमें सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी, नल-दमयन्ती, ब्याहलो के अतिरिक्त दशमस्कंध टीका, नागलीला, भागवत, गोवर्धन लीला, सूरपचीसी, सूरसागर सार, प्राणप्यारी, आदि ग्रन्थ सम्मिलित हैं। इनमें प्रारम्भ के तीन ग्रंथ ही महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं, साहित्य लहरी की प्राप्त प्रति में बहुत प्रक्षिप्तांश जुड़े हुए हैं।

'साहित्य लहरी, सूरसागर, सूर की सारावली।
श्रीकृष्ण जी की बाल-छवि पर लेखनी अनुपम चली।।'

सूरसागर का मुख्य वर्ण्य विषय श्री कृष्ण की लीलाओं का गान रहा है।

सूरसारावली में कवि ने जिन कृष्ण विषयक कथात्मक और सेवा परक पदों का गान किया उन्ही के सार रूप में उन्होंने सारावली की रचना की है।

सहित्यलहरी में सूर के दृष्टिकूट पद संकलित हैं।

सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ

1. सूरदास के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह से मनुष्य को सद्गति मिल सकती है। अटल भक्ति कर्मभेद, जातिभेद, ज्ञान, योग से श्रेष्ठ है।

2. सूर ने वात्सल्य, शृंगार और शांत रसों को मुख्य रूप से अपनाया है। सूर ने अपनी कल्पना और प्रतिभा के सहारे कृष्ण के बाल्य-रूप का अति सुंदर, सरस, सजीव और मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है। बालकों की चपलता, स्पर्धा, अभिलाषा, आकांक्षा का वर्णन करने में विश्व व्यापी बाल-स्वरूप का चित्रण किया है। बाल-कृष्ण की एक-एक चेष्टा के चित्रण में कवि ने कमाल की होशियारी एवं सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है-

मैया कबहिं बढ़ैगी चौटी?
किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।

सूर के कृष्ण प्रेम और माधुर्य की प्रतिमूर्ति हैं, जिनकी अभिव्यक्ति बड़ी ही स्वाभाविक और सजीव रूप में हुई है।

3. जो कोमलकांत पदावली, भावानुकूल शब्द-चयन, सार्थक अलंकार-योजना, धारावाही प्रवाह, संगीतात्मकता एवं सजीवता सूर की भाषा में है, उसे देखकर तो यही कहना पड़ता है कि सूर ने ही सर्व प्रथम ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप दिया है।
4. सूर ने भक्ति के साथ शृंगार को जोड़कर उसके संयोग-वियोग पक्षों का जैसा वर्णन किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।
5. सूर ने विनय के पद भी रचे हैं, जिसमें उनकी दास्य-भावना कहीं-कहीं तुलसीदास से आगे बढ़ जाती है-

हमारे प्रभु औगुन चित न धरौ।
समदरसी है मान तुम्हारौ, सोई पार करौ।

6. सूर ने स्थान-स्थान पर कूट पद भी लिखे हैं।
7. प्रेम के स्वच्छ और मार्जित रूप का चित्रण भारतीय साहित्य में किसी और कवि ने नहीं किया है यह सूरदास की अपनी विशेषता है। वियोग के समय राधिका का जो चित्र सूरदास ने चित्रित किया है, वह इस प्रेम के योग्य है
8. सूर ने यशोदा आदि के शील, गुण आदि का सुंदर चित्रण किया है।
9. सूर का भ्रमरगीत वियोग-शृंगार का ही उत्कृष्ट ग्रंथ नहीं है, उसमें सगुण और निर्गुण का भी विवेचन हुआ है। इसमें विशेषकर उद्धव-गोपी संवादों में हास्य-व्यंग्य के अच्छे छींटे भी मिलते हैं।

10. सूर काव्य में प्रकृति-सौंदर्य का सूक्ष्म और सजीव वर्णन मिलता है।
11. सूर की कविता में पुराने आख्यानों और कथनों का उल्लेख बहुत स्थानों पर मिलता है।
12. सूर के गेय पदों में हृदयस्थ भावों की बड़ी सुंदर व्यजना हुई है। उनके कृष्ण-लीला संबंधी पदों में सूर के भक्त और कवि हृदय की सुंदर झाँकी मिलती हैं।
13. सूर का काव्य भाव-पक्ष की दृष्टि से ही महान नहीं है, कला-पक्ष की दृष्टि से भी वह उतना ही महत्वपूर्ण है। सूर की भाषा सरल, स्वाभाविक तथा वाग्वैदिग्धपूर्ण है। अलंकार-योजना की दृष्टि से भी उनका कला-पक्ष सबल है। **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने सूर की कवित्व-शक्ति के बारे में लिखा है-

"सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानो अलंकार-शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है। उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरदास हिंदी साहित्य के महाकवि हैं, क्योंकि उन्होंने न केवल भाव और भाषा की दृष्टि से साहित्य को सुसज्जित किया, वरन् कृष्ण-काव्य की विशिष्ट परंपरा को भी जन्म दिया।

सूरसागर, कीर्तनों-पदों का एक सुंदर संकलन है, जो शब्दार्थ की दृष्टि से उपयुक्त और आदरणीय है। इसमें प्रथम नौ अध्याय संक्षिप्त है, पर दशम स्कन्ध का बहुत विस्तार हो गया है। इसमें भक्ति की प्रधानता है। इसके दो प्रसंग 'कृष्ण की बाल-लीला' और 'भ्रमर-गीतसार' अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

विभिन्न स्थानों पर सूरसागरकी सौ से भी अधिक प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुई ह तक है इनमें प्राचीनतम प्रतिलिपि नाथद्वारा (मेवाड़) के सरस्वती भण्डार में सुरक्षित पायी गई हैं। दार्शनिक विचारों की दृष्टि से 'भागवत' और 'सूरसागर' में पर्याप्त अन्तर है।

सूरसागर की सराहना करते हुए डॉक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है-

"काव्य गुणों की इस विशाल वनस्थली में एक अपना सहज सौन्दर्य है। वह उस रमणीय उद्यान के समान नहीं जिसका सौन्दर्य पद-पद पर माली के कृतित्त्व की याद दिलाता है, बल्कि उस अकृत्रिम वन-भूमि की भाँति है, जिसका रचयिता रचना में घुलमिल गया है।"

परिचय

हस्तलिखित रूप में 'सूरसागर' के दो रूप मिलते हैं-'संग्रहात्मक' और संस्कृत भागवत अनुसार 'द्वादश स्कंधात्मक'। संग्रहात्मक 'सूरसागर' के भी दो रूप देखने में आते हैं। पहला, आपके-गौघाट (आगरा) पर श्रीवल्लभाचार्य के शिष्य होने पर प्रथम प्रथम रचे गए भगवल्लीलात्मक पद-'ब्रज भयौ मैहैर कें पूत, जब यै बात सुनी' से प्रारंभ होता है, दूसरा-'मथुरा-जन्म-लीला' से।

कहा जाता है, हिंदी साहित्येतिहास ग्रंथों से ओझल 'सूरसागर' के उत्पत्ति विकास का एक अलग इतिहास है, जो अब तक प्रकाश में नहीं आया है और श्री सूर के समकालीन भक्त इतिहास रचयिताओं-'श्री गोकुलनाथ जी, श्रीहरिराय जी (सं.-1647 वि.) और श्री नाभादास जी (सं.-1642 वि.) प्रभृति में जिसका विशेष रूप से उल्लेख किया है। अतः इन पूर्वा पर के अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों से जाना जाता है कि श्री सूर ने सहस्रावधि पद किए, लक्षावधि पद रचे, कोई ग्रंथ नहीं रचा। बाद में अनंत-सूर-पदावली सागर कहलाई। वस्तुतः श्रीसूर, जैसा इन ऊपर लिए संदर्भ ग्रंथों से जाना जाता है, भगवल्लीला के भाव भरे उन्मुक्त गायक थे, सो नित्य नई-नई पद रचना कर, अपने प्रभु 'गोवर्धननाथ जी' के सम्मुख गाया करते थे। रचना करने वाले थे, सो नित्य सवेरे से संध्या तक गाए जाने वाले रागों में ललित रसों का रंग भरकर अपनी वाणी की तूलिका से चित्रित कर अपने को धन्य किया करते थे। अस्तु, न उनमें अपनी उन्मुक्त कृतियों को संग्रह करने का भाव था और न कई क्रम देने की उमंग। उनका कार्य तो अपने प्रभु की नाना गुनन गरूली गुणावली गाना, उसके अमृतोपम रस में निमग्न हो झूमना तथा-'एतेचांश कलापुंसः कृष्णस्तु भगवान स्वयं' (भाग-1/3/28) की नंदालय में बाल से पौगंड अवस्था तक लीलाओं में तादात्मभाव से विभोर होना था, यहाँ अपनी समस्त मुक्तक रचनाओं को एकत्र कर क्रमबद्ध करने का समय और स्थान कहाँ था।

कहा जाता है, श्री सूरदास 'एकदम अंधे थे,' तब अपनी जब तब की समस्त रचनाओं को कैसे एकत्र करते? फिर भी सूरदास द्वारा नित्य रचे और गाये जाने वाले पदों का लेखन और संकलन अवश्य होता रहा होगा। अन्यथा वे मौलिक रूप से रचित और गाए गए पद लुप्त हो गए होते। संभवतः सूर के समकालीन शिष्य या मित्र-यदि सूर सचमुच अंधे थे तो-उन पदों को लिखते और संकलित करते रहे होंगे। अब तक उसके संग्रहात्मक या द्वादस स्कंधात्मक बनने का कोई इतिहास पूर्णतः ज्ञात नहीं है। 'गीत-संगीत-सागर' (गो. रघुनाथ,,

जी नामरत्नारूय) श्री विट्ठलनाथ जी गोस्वामी, (सं. 1572 वि.) के समय श्रीमद्वल्लभाचार्य सेवित कई निधियाँ (मूर्तियाँ), आपके वंशजों द्वारा, ब्रज से बाहर चली गई थीं। अत: संप्रदाय के अनुसार 'कीर्तनों के बिना सेवा नहीं और सेवा बिना कीर्तन नहीं'। अत: जहाँ-जहाँ ये निधियाँ गईं, वहीं वहीं 'कंठ' या 'ग्रंथ' रूप में अष्टछाप के कवियों की कृतियाँ भी गई और वहाँ इनके संकलित रूप में-'नित्य कीर्तन' और 'वर्षोत्सव' नाम पड़े, ऐसा भी कहा जाता है।

सूर के सागर का 'संग्रहात्मक' रूप श्रीसूर के सम्मुख ही संकलित हो चुका था। उसकी सं. 1630 वि. की लिखी प्रति ब्रज में मिलती है। बाद के अनेक लिखित संग्रह रूप भी उसके मिलते हैं। मुद्रित रूप इसका कहीं पुराना है। पहले यह मथुरा (सं. 1840 ई.) से, बाद में आगरा (सं.-1867 ई. तीसरी बार), जयपुर (राजस्थान सं. 1865 ई.), दिल्ली (सं. 1860 ई.) और कलकत्ता से सं. 1898 ई. में लीथो प्रेसों से छपकर प्रकाशित हो चुका था। कृष्णानंद व्यासदेव संकलित 'रागकल्पद्रुम' भी इस समय का संग्रहात्मक सूरसागर का एक विकृत रूप है, जो संगीत के रंगों में बँटा हुआ है। ब्रजभाषा के रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि 'द्विजदेवष्-अर्थात् महाराज मानसिंह, अयोध्या नरेश (सं. 1907 वि.) ने इसे सं. 1920 वि. में संपादित कर लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित किया था। ये सभी संग्रहात्मक रूप सूरसागर, भगवान श्रीकृष्ण की जन्मलीला गायन रूप गोकुल नंदालय में मनाए गए 'नंदमहोत्सव' से प्रारंभ होकर उनकी समस्त ब्रजलीला मथुरा आगमन, उद्धव-गोपी-संवाद, श्री राम, नरसिंह तथा वामन जयंतियाँ एवं पहले-श्री वल्लभाचार्य जी की शिष्यता से पूर्व रचे गए 'दीनता आश्रय' के पदों के बाद समाप्त हुए हैं। सूर पदों के इस प्रकार संकलन की प्रवृत्ति उनके सागर के संग्रहात्मक रूप पर ही समाप्त नहीं, वह विविध रूपों में आगे बढ़ी, जिससे उनकी पद कृति के नाना संकलित रूप हस्तलिखित तथा मुद्रित देखने में आते हैं, जो इस प्रकार हैं-दीनता आश्रय के पद, दृष्टिकुल पद, जिसे आज 'साहित्यलहरी' कहा जाता है। रामायण, बाललीला के पद, विनय पत्रिका, वैराग्यसतक, सूरछत्तीसी, सूरबहोत्तरी, सूर भ्रमरगीत, सूरसाठी, सूरदास नयन, मुरली माधुरी आदि-आदि, किंतु ये सभी संग्रह आपके संग्रहात्मक 'सागर कल्पतरु' के ही मधुर फल हैं।

श्री सूर के सागर का रूप श्री व्यास प्रणीत और शुक-मुख-निसृत 'द्वादश स्कंधात्मक' भी बना। वह कब बना, कुछ कहा नहीं जा सकता। हिंदी के साहित्येतिहास ग्रंथ इस विषय में चुप हैं। इस द्वादश स्कंधात्मक 'सूर सागर' की

सबसे प्राचीन प्रति सं. 1757 वि. की मिलती है। इसके बाद की कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। उनके आधार पर कहा जा सकता है कि सूर समुदित सागर का यह 'श्रीमद्भागवत अनुसार द्वादश स्कंधात्मक रूप' अठारहवीं शती के पहले नहीं बन पाया था। उसका पूर्वकथित 'संग्रहात्मक' रूप इस समय तक काफी प्रसार पा चुका था। साथ ही इस (संग्रहात्मक) रूप की सुंदरता, सरसता और भाषा की शुद्धता एवं मनोहरता में भी कोई विशेष अंतर नहीं हो पाया था। वह सूर के समय जैसी विविध रागमयी थी वैसी ही सुंदर बनी रही, किंतु इसके इस द्वादश स्कंधात्मक रूपों में वह बात समुचित रूप से नहीं रह सकी। ज्यों-ज्यों हस्तलिखित रूपों में वह आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों सूर की मंजुल भाषा से दूर हटती गई। फिर भी जिस किसी व्यक्ति ने अपना अस्तित्त्व खोकर और 'हरि, हरि, हरि हरि सुमरन करौ' जैसे असुंदर भाषाहीन कथात्मक पदों की रचना कर तथा श्री सूर के श्रीमद्वल्लभाचार्य की चरणशरण में आने से पहले रचे गए 'दीनता आश्रय' के पद विशेषों को भागवत अनुसार प्रथम स्कंध तक ही नहीं, दशम स्कंध उत्तरार्द्ध, एकादश और द्वादश स्कंधों को सँजोया, वह आदरणीय है।

रूपरेखा

इस द्वादश स्कंधात्मक सूरसागर की 'रूपरेखा' इस प्रकार है–

प्रथम स्कंध-भक्ति की सरस व्याख्या, भागवत निर्माण का प्रयोजन, शुक उत्पत्ति, व्यास अवतार, संक्षिप्त महाभारत कथा, सूत-शौनक-संवाद, भीष्म प्रतिज्ञा, भीष्म-देह-त्याग, कृष्ण-द्वारिका-गमन, युधिष्ठिर वैराग्य, पांडवों का हिमालयगमन, परीक्षितजन्म, ऋषिशाप, कलियुग को दंड इत्यादि।

द्वितीय स्कंध-सृष्टि उत्पत्ति, विराट् पुरुष का वर्णन, चौबीस अवतारों की कथा, ब्रह्मा उत्पत्ति, भागवत चार श्लोक महिमा। साथ ही इस स्कंध के प्रारंभ में भक्ति और सत्संग की महिमा, भक्ति साधन, आत्मज्ञान, भगवान की विराट् रूप में भारती का भी यक्रिंचित् उल्लेख है।

तृतीय स्कंध-उद्धव-विदुर-संवाद, विदुर को मैत्रेय द्वारा बताए गए ज्ञान की प्राप्ति, सप्तर्षि और चार मनुष्यों की उत्पत्ति, देवासुर जन्म, बाराह-अवतार-वर्णन, कर्दम-देवहूति-विवाह, कपिल मुनि अवतार, देवहूति का कपिल मुनि से भक्ति संबंधी प्रश्न, भक्तिमहिमा, देवहूति-हरि-पद-प्राप्ति।

चतुर्थ स्कंध-यज्ञपुरुष अवतार, पार्वती विवाह, ध्रुव कथा, पृथु अवतार, पुरंजन आख्यान।

पंचम स्कंध–ऋषभदेव अवतार, जड़भरत कथा, रहूगण संवाद।

षष्ठ स्कंध–अजामिल उद्धार, बृहस्पति–अवतार–कथन, वृत्रासुरवध, इंद्र का सिंहासन से च्युत होना, गुरुमहिमा, गुरुकृपा से इंद्र को पुनः सिंहासन प्राप्ति।

सप्तम स्कंध–नृसिंह–अवतार–वर्णन।

अष्टम स्कंध–गजेंद्रमोक्ष, कूर्मावतार, समुद्र मंथन, विष्णु भगवान का मोहिनी–रूप–धारण, वामन तथा मत्स्य अवतारों का वर्णन।

नवम स्कंध–पुरुरवा–उर्वशी–आख्यान, च्यवन ऋषि कथा, हलधर विवाह, राजा अंबरीय और सौभिर ऋषि का उपाख्यान, गंगा आगमन, परशुराम और श्री राम का अवतार, अहिल्योद्धार।

दशम स्कंध (पूर्वार्द्ध)–भगवान कृष्ण का जन्म, मथुरा से गोकुल पधारना, पूतनावध, शकटासुर तथा तृणावर्त वध, नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णछेदन, घुटुरुन चलाना, बालवेशशोभा, चंद्रप्रस्ताव, कलेऊ, मृत्तिकाभक्षण, माखनचोर, गोदोहन, वंत्सासुर, बकासुर, अधासुरों के वध, ब्रह्मा द्वारा गो–वत्स–हरण, राधा–प्रथम–मिलन, राधा–नंदघर–आगमन, कृष्ण का राधा के घर जाना, गोचारण, धेनुकवध, कालियदमन, प्रलंबासुरवध, मुरली–चीर–हरण, पनघट रोकना, गोवर्धन पूजा, दानलीला, नेत्र वर्णन, रासलीला, राधा–कृष्ण–विवाह, मान, राधा गुरुमान, हिंडोला–लीला, वृषभासुर, केशी, भौमासुर वध, अक्रूर आगमन, कृष्ण का मथुरा चला जाना, कुब्जा मिलन, धोबी संहार, शल, तोषल, मुष्टिक और चाणूर का वध, धनुषभंग, कुवलयापीड़ (हाथी) वध, कंसवध, राजा उग्रसेन को राजगद्दी पर बैठाना, वसुदेव देवकी की कारागार से मुक्ति, यज्ञोपवीत, कुब्जाघर गमन, आदि–आदि।

दशम स्कंध (उत्तरार्द्ध)–जरासंध युद्ध, द्वारका निर्माण, कालियदवन दहन, मुचुकुंद उद्धार, द्वारका प्रवेश, रुक्मिणी विवाह, प्रद्युम्न विवाह, अनिरुद्ध विवाह, राजा मृग नृग उद्धार, बलराम जी का पुनः ब्रजगमन, सांब विवाह, कृष्ण–हस्तिनापुर–गमन, जरासंध और शिशुपाल का वध, शाल्व का द्वारका पर आक्रमण, शाल्ववध, दतवक्र का वध, बल्वलवध, सुदामाचरित्र, कुरुक्षेत्र आगमन, कृष्ण का श्रीनंद, यशोदा तथा गोपियों से मिलना, वेद और नारद स्तुतियाँ, अर्जुन–सुभद्रा–विवाह, भस्मासुर वध, भृगु परीक्षा, इत्यादि।

एकादश स्कंध–श्रीकृष्ण का उद्धव को बदरिकाश्रम भेजना, नारायण तथा हंसावतार कथन।

द्वादश स्कंध-'बौद्धावतार, कल्कि-अवतार-कथन, राजा परीक्षित तथा जन्मेजय कथा, भगवत् अवतारों का वर्णन आदि।'

इस प्रकार यत्र-तत्र बिखरे इस श्रीमद्भागवत अनुसार द्वादश-स्कंधात्मक रूप में भी, श्री सूर का विशिष्ट वाङ्मय 'हरि, हरि, हरि, हरि सुमरैन करौ' जैसे अनेक अनगढ़ काँच मणियों के साथ रगड़ खा-खाकर मटमैला होकर भी कवित्व की प्रभा के साथ कोमलता, कमनीयता, कला, एवं कृष्णस्तुभगवान् स्वयं की सगुणात्मक भक्ति, उसकी भव्यता, विलक्षणता, उनके विलास, व्यंग्य और विदग्धता आदि चमक-चमककर आपके कृतित्त्व रूप सागर को, नित्य गए रूप में दर्शनीय और वंदनीय बना रहे हैं।

कृष्ण काव्य परम्परा और सूरदास

कृष्ण-भक्ति काव्य के आरम्भ की पृष्ठभूमि, उसके विकास की रूपरेखा और उसके महत्त्व को रेखांकित करते हुए बड़ी स्पष्टता से यह तथ्य सामने आता है कि कृष्ण-भक्ति के लोक रंजनकारी काव्य ने भारतीय मानस में आनन्द की लहर पैदा की। सरलता, सहजता, वाक्य चातुर्य और वाद्विद्ग्धता से युक्त भक्ति और लीला का यह काव्य आज भी प्रासंगिक है। वात्सल्य, बाल-लीला, माधुर्य, कान्त, दास्य, सख्य आदि भावों की भक्ति और लीला का चित्रण इस काव्य को खास बनाता है। काव्य की इस परम्परा में सबसे मार्मिक, संवेदनशील और सर्जनात्मक कविता सूरदास की है। कृष्ण विषयक भावों से परिपूर्ण सूर ने अपनी पूर्ववर्ती काव्य-परम्परा का अनुसरण किया और फिर अपनी काव्य-प्रतिभा एवं भक्ति से ऐसा काव्य-संसार रचा कि बाद की कृष्ण-भक्ति कविता पर इसकी अमिट छाप पड़ी। **रामचन्द्र शुक्ल** ने तो यहाँ तक लिख दिया कि वात्सल्य और बाल-लीला का काव्य-सृजन जो सूर के बाद हुआ, वह सूर के काव्य का जूठन ही है। इस पाठ में सूरदास के इसी काव्य-वैशिष्ट्य का उद्घाटन किया जाएगा।

कृष्ण-भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि और विकास

भारत में कृष्ण-काव्य की परम्परा के शुरुआत की कोई निश्चित जानकारी नहीं है। मध्ययुग के भक्ति-आन्दोलन से कृष्ण-भक्ति काव्य का विधिवत् विकास हुआ, लेकिन इसकी पृष्ठभूमि उससे पूर्व की है, जहाँ से इस काव्य को आधार मिलता है। कृष्ण-भक्ति धारा का विकास सम्पूर्ण भारत में हुआ। भक्ति-आन्दोलन में भक्ति-काव्य की यह धारा दक्षिण से आरम्भ होकर उत्तर

और फिर पूर्व एवं पश्चमि तक फैल गई। वर्तमान समय में कृष्ण भक्ति के विस्तार और प्रसिद्धि का प्रमाण यही है कि भारत ही नहीं, विश्व के कई देशो में इस काव्य-परम्परा के साहित्य को बड़े चाव से पढ़ा और सुना जाता है। कृष्ण अब भारत ही नहीं, विश्व भर के साहित्य के प्रमुख नायक हैं, जिनको केन्द्रित कर विश्व की विविध भाषाओं में काव्य-सृजन हुआ है।

कृष्ण-भक्ति काव्य का आरम्भ

कृष्ण-भक्ति का विस्तार भले ही भक्ति-आन्दोलन के बाद हुआ, पर उसका आरम्भ पहले ही हो चुका था। वैदिक साहित्य में कृष्ण का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। कृष्ण की चर्चा छान्दोग्य उपनिषद में भी दिखती है। बौद्धों की जातक कथा में इसका संकेत मिलता है। जैनों के यहाँ भी कृष्ण उनके तीर्थंकरों के समय विद्यमान हैं। पाणिनि के अष्टाध्यायी में 'वासुदेवार्णुनाभ्यावुन' सूत्र से वासुदेव (कृष्ण) नाम का उल्लेख मिलता है। वासुदेव को कालान्तर में कृष्ण ही माना गया है। आगे चलकर भागवत कथाओं एवं महाभारत में कृष्ण का स्वरूप विकसित हुआ है। महाभारत काल में वासुदेव, विष्णु रूप में राजनीतिज्ञ, योगी, लीलापुरुष कृष्ण में रूपान्तरित हो गया। कृष्ण के चरित्र की प्रतिष्ठा में सर्वाधिक योगदान 'श्रीमद्भागवतपुराण' का रहा है। कृष्ण-भक्ति का सबसे बड़ा स्रोत यही ग्रन्थ है। कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी सम्प्रदायों की दार्शनिक मान्यताओं का आधार भी यही ग्रन्थ है। कृष्ण-भक्ति काव्य के उत्तरोतर विकास में कृष्णचरित विकसित हुआ। यही परम्परा दक्षिण भारत में तमिल साहित्य में एवं बंगाल में चैतन्य महाप्रभु से लेकर मिथिला में विद्यापति तक पहुँचती है। सूर रचित कृष्ण-काव्य पर विद्यापति की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। अधिकतर पदों के भाव भी समानार्थक प्रतीत होते हैं।

कृष्ण-भक्ति काव्य परम्परा और प्रमुख कवि

भक्ति-काव्य का आरम्भ निर्गुण सन्त-काव्य से होता है, जिसका प्रसार सगुण भक्ति में हुआ। जनपदीय भाषाओं में जब राम और कृष्ण-भक्त कवियों ने इनके चरित्र को काव्य में सृजित किया, तो जीवन में नए उत्सव और उल्लास का स्वर संचरित हुआ। कृष्ण भक्ति काव्य का प्रसार तो इसमें सबसे अधिक व्यापक और सृजनशील है। दार्शनिक आधार की वैचारिकी पाकर भक्ति-काव्य की कविताई अधिक विकसित हुई। राम-भक्ति में रामानुजाचार्य

ने 'विशिष्टाद्वैतवाद' से यह कार्य किया, तो बल्लभाचार्य के 'शुद्धाद्वैतवाद' ने कृष्ण-भक्ति काव्य को वैचारिक आधार प्रदान किया। शुद्धाद्वैतवाद के आधार पर उन्होंने कृष्ण-भक्ति के विकास के लिए जिस वैज्ञानिक भक्ति-मार्ग का विकास किया, उसे 'पुष्टिमार्ग' कहते हैं। वल्लभाचार्य ने भक्ति के इस मार्ग की दार्शनिक और भक्तिपरक विवेचना की। उन्होंने कृष्ण-भक्त कवियों को इसमें दीक्षित कर कृष्ण-भक्ति काव्य-धारा के मार्ग को प्रशस्त किया। इन कवियों में सबसे विशिष्ट स्वर 'सूरदास' का है। वल्लभाचार्य ने 'शुद्धाद्वैतवाद' में ब्रह्म और जीव में अन्तर स्पष्ट करते हुए ब्रह्म को सत्, चित् और आनन्द, 'सच्चदिानन्द' स्वरूप का विवेचन किया। उनके अनुसार ब्रह्म में सत्, चित् और आनन्द प्रत्यक्ष रूप में मौजूद होते हैं। ब्रह्म अपने इन तीनों स्वरूपों का आविर्भाव और तिरोभाव करता रहता है। 'शुद्धाद्वैतवाद' का यह दर्शन भक्ति के क्षेत्र में 'पुष्टिमार्ग' कहलाता है।

'पुष्टिमार्ग' की अवधारणा का स्रोत 'श्रीमद्भागवत पुराण' है। इस पुराण के दूसरे स्कन्ध के दसवें अध्याय के चौथे श्लोक में कहा गया है-'पोषण तद्नुग्रहः'। इस कथन में 'तद्' भगवान है 'पोषण' पुष्टि है। भगवान का अनुग्रह या अनुकम्पा ही जीवात्मा की पुष्टि अर्थात् पोषण का सर्वोत्तम अवलम्ब है। भगवान की अनुकम्पा से जीवात्मा में भक्ति का संचार होता है। इस मार्ग के अनुसार प्रेमपूर्वक ईश्वर की सेवा और आराधना जीवात्मा का परम लक्ष्य है। जीवों की प्रकृति की भिन्नता के अनुसार पुष्टि चार प्रकार की है-प्रवाह पुष्टि, मर्यादा पुष्टि, पुष्टि-पुष्टि एवं शुद्ध पुष्टि। इसमें शुद्ध पुष्टि सर्वोत्तम है। इसमें भक्त भगवान और उसकी लीलाओं से तदाकार या पूर्ण तादात्म्य अनुभव करने लगता है। भक्त और भगवान एक हो जाते हैं। भक्त की जीवदशा समाप्त हो जाती है। वह भगवान पर पूरी तरह से आश्रित हो जाता है। पुष्टि सम्प्रदाय में इसे सायुज्य मुक्ति कहते हैं। 'सायुज्य' का अर्थ है 'भेदरहित मिलना', आत्मा का परमात्मा में लीन होकर एकमेक हो जाना, सायुज्य मुक्ति है।

वल्लभाचार्य के अनुसार ब्रह्म का आनन्द से युक्त रूप ही उसका असली रूप है इसी में उसका ब्रह्मत्व निहित है। सत् और चित् वाला अंश तो जीवात्मा में आविर्भूत रहता ही है, केवल आनन्द अंश तिरोहित रहता है। इसी आनन्द प्रधान ब्रह्म में लीन होकर जीव उसकी नित्य लीला सृष्टि में प्रवेश करता है। पुष्टिमार्ग रागात्मिका भक्ति है, जो भगवत्कृपा से भक्त को प्राप्त होती है, जिसका आधार भगवत प्रेम है। इसे 'प्रेम लक्षणा भक्ति' इसी कारण कहा जाता है। 'प्रेम लक्षणा

भक्ति' में वात्सल्य, सख्य और माधुर्य तीन प्रकार की भक्ति की प्रधानता रहती है। कृष्णोपासक कवियों में प्रायः इन्ही तीनों भक्ति का रूप मौजूद है।

वल्लभाचार्य के पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ ने अपने पिता के चार शिष्यों सूरदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास और कृष्णदास तथा अपने चार शिष्यों छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास एवं नन्ददास को लेकर अष्टछाप का निर्माण किया। आठ कवि होने के कारण नाम अष्टछाप रखा। ये आठों भक्त कवि सख्य-भाव से कृष्ण में अनुरक्त होकर उनका कीर्तन और गायन करते थे। 'भक्ति', 'कविता' और 'संगीत' तीनों के मेल से 'सूरदास' का काव्य इनमें सबसे सृजनशील है। सूरदास का सूरसागर कृष्ण-भक्ति धारा का अनुपम ग्रन्थ है। हालाँकि सूर के इस ग्रन्थ में वल्लभाचार्य के दर्शन और श्रीमद्भागवत के प्रसंग, काव्य-स्रोत के रूप में मौजूद हैं, लेकिन सूर ने अपनी मौलिकता से सूरसागर में जिन नए दृश्यों और प्रसंगों की उद्भावना की है, वह विरल हैं। भक्ति आन्दोलन की सामाजिकता, लोक-जागरण की चेतना और प्रेम की संवेदना के संयोजन से सूरदास ने श्रेष्ठ भक्ति-काव्य का सृजन किया। वात्सल्य और शृंगार वर्णन के प्रसंगों को पढ़कर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सही लिखा है कि सूर वात्सल्य और शृंगार का कोना-कोना झाँक आए हैं। भ्रमरगीत-सार में सहृदयता और वाग्विदग्धता का प्रयोग सूर के कलात्मक वैभव का उदाहरण है। अष्टछाप के अन्य कवियों में परमानन्ददास का काव्य उल्लेखनीय है। परमानन्ददास सूरदास के बाद अष्टछाप के एक मात्र कवि थे, जिन्होंने कृष्ण की तमाम लीलाओं से जुड़े पदों की रचना करने का प्रयास किया। 'परमानंदसागर' और 'परमानन्द के पद' नाम से इनके संग्रह उपलब्ध हैं। उनके द्वारा रचित 'परमानंदसागर' में 1101 पद संगृहित हैं। वात्सल्य, बाल-लीला और वियोग का सृजनात्मक चित्रण इनके काव्य में मौजूद हैं। कृष्णदास, कुम्भनदास की भाँति लीला से जुड़े पदों की रचना करते थे। उन्होंने लगभग 250 पदों की रचना की। कृष्णदास की कविता में राधाकृष्ण प्रेम, रूप-सौन्दर्य और संगीत तत्त्व का दर्शन होता है। कुम्भनदास अष्टछाप में दीक्षित प्रथम कवि हैं। कुम्भनदास को इष्टदेव कृष्ण के इतर किसी भी जन का यशगान करना काम्य नहीं था। 'कुम्भनदास' का यह पद भक्ति-काव्य प्रेमी हर पाठक के लिए प्रेरणाप्रद है–

सन्तन को कहा सीकरी सो काम/आवत जात पनहिया टूटी, बिसरि गयो हरि नाम।।

उनकी भक्ति मधुर भाव की लीला-भक्ति थी। राग कल्पद्रुम, राग रत्नाकर और सम्प्रदाय के कीर्तन संग्रहों में उनके लगभग 500 गीत संकलित हैं। उनके पदों का एक संग्रह कुम्भनदास शीर्षक से भी मौजूद है। अपने पदों में उनके द्वारा जन्माष्टमी, गोवर्धनपूजा, गोचारण, भोग, प्रभु के रूप आदि का वर्णन अत्यन्त मनोहारी है।

'नन्ददास' अष्टछाप कवियों में सूर के बाद सबसे प्रमुख हैं। नन्ददास ने कृष्ण की लीला के अतिरिक्त लौकिक एवं साहित्यिक विषयों पर भी रचनाएँ कीं। रसमंजरी, रासपंचाध्यायी और भँवरगीत इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। सूरदास के भ्रमरगीत की भाँति उद्धव-गोपी संवाद इनके यहाँ भँवरगीत में दिखाई देता है, जो खण्डकाव्य के रूप में है। उन्होंने अपनी रचना सिद्धान्तपन्चाध्यायी में कृष्ण और गोपियों की रासलीला का वर्णन किया है। सुदामाचरित और गोवर्धनलीला उनकी चर्चित कृतियां है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी नन्ददास की तार्किकता और कलात्मक उत्कृष्टता, उनको अष्टछाप का विशिष्ट कवि बनाती है। कहा भी गया है, 'और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया'।

गोविन्दस्वामी ने भी कुम्भनदास की भाँति पदों की रचना की। ये संगीत कला में भी निपुण थे। गोविन्दस्वामी के पदों का संकलन गोविन्दस्वामी के पद के शीर्षक से हैं। छीतस्वामी कविता और संगीत दोनों में निपुण थे। इनके पदों का संकलन छीतस्वामी की पदावली शीर्षक से है। चतुर्भुजदास कुम्भनदास के पुत्र थे। इन्होंने स्फुट पदों की रचना की है। इनके पद चतुर्भुज कीर्तन संग्रह व दानलीला शीर्षक से हैं। कृष्ण के प्रेम और माधुर्य भाव की भक्ति का इन कवियों ने रचनात्मक चित्रण किया है।

इनके अतिरिक्त कृष्ण-भक्ति से जुड़े अन्य दार्शनिक सम्प्रदायों में निम्बार्क सम्प्रदाय, राधावल्लभ सम्प्रदाय हरिदासी सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय और कुछ अन्य सम्प्रदाय के निरपेक्ष कवि भी हैं। निम्बार्काचार्य 'द्वैताद्वैतवाद' के प्रतिपादक थे। इन्होंने भक्ति के पाँच रूपों वात्सल्य, सख्य, दास्य, दाम्पत्य और शान्त भक्ति को प्रतिष्ठित किया। इस सम्प्रदाय के कवियों में श्रीभट्ट, हरिव्यासदेव, परशुराम उल्लेखनीय हैं।

कृष्ण-भक्त कवि सम्प्रदाय में 'राधावल्लभ' सम्प्रदाय का प्रमुख स्थान है। इसकी स्थापना आचार्य हितहरिवंश ने की। इसमें प्रेम के सख्य-भाव को महत्त्व दिया जाता है। हितहरिवंश, दामोदरदास, हरिरामव्यास, चतुर्भुजदास, ध्रुवदास इस सम्प्रदाय के कवि हैं। स्वामी हरिदास द्वारा संस्थापित हरिदासी सम्प्रदाय में भी

'प्रेम' को महत्त्व दिया गया। राधाकृष्ण की प्रेमलीला को यहाँ महत्त्व दिया गया है। स्वामी हरिदास, जगन्नाथ गोस्वामी, नागरीदास, सरसदास इस सम्प्रदाय के प्रमुख कवि हैं। कृष्ण-भक्ति धारा में चैतन्य मत, गौड़ीय सम्प्रदाय के रूप में संघटित हुआ। रागदास, गदाधर, भट्ट, भगवानदास, इस धारा के कवि हैं।

अष्टछाप के कवियों और विभिन्न सम्प्रदायों के कृष्ण-भक्त कवियों के अतिरिक्त कृष्ण काव्य-परम्परा में कुछ ऐसे कवि हैं, जिनकी कविता में पन्थ निरपेक्ष मौलिक सृजन और काव्य संवेदना की गहराई है। ऐसे ही कवियों में मीराबाई और रसखान का नाम लिया जाता है। मीरा का जीवन और उनकी कविता एक दूसरे में घुले-मिले हैं। मीरा की कविता में सूर के काव्य का विस्तार है। **रामस्वरूप चर्तुर्वेदी** ने भक्ति काव्य यात्रा में सही लिखा है कि "मीरा का काव्य सूर द्वारा विस्तार में चित्रित गोपियों की विरहोन्मुखता का 'डिटेल' या 'ब्यौरा' है। जीवन-वृत्त में ब्रज की गोपियों से और रचना-धर्मिता में सूरदास से एक बारगी साम्य मीरा के पदों में अतिरिक्त तीव्रता भरता है।'' मीरा के काव्य में ब्रज, राजस्थान और गुजरात की सांस्कृतिक छवियों और काव्य-भाषा का सृजनात्मक प्रतिफलन हुआ है। प्रेम और भक्ति का संश्लेष मीरा के काव्य को विरल बनाता है। रसखान कृष्ण-भक्ति परम्परा में प्रेम-साधना के अद्‌भुत कवि हैं। इनके दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं-सुजानरसखान और प्रेमवाटिका। इन्होंने अपने पदों में दोहा, कवित्त एवं सवैया छन्दों का प्रयोग किया है। सवैया छन्द में रचित उनका निम्नलिखित पद काफी प्रसिद्ध हुआ–

मानुष हौं तो वही रसखान बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन
जौं पसु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन

×××

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँपुर को तजि डारौं

×××

मोर पखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंज की माल गले पहिरौंगी।
ओढ़ि पिताम्बर लै लकुटी बन गोधन ग्वालन संग फिरौंगी।

×××

सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसहु जाहिं निरन्तर गावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं।

भाषा की सहजता एवं छन्दों के प्रसंगानुकूल प्रयोग ने इनके पदों को न सिर्फ मनोहारी बनाया, बल्कि उतनी ही लोकप्रियता प्रदान की।

हिन्दी कृष्ण-काव्य परम्परा और सूर का काव्य

राधा-कृष्ण विषयक प्रथम काव्य रचना जयदेव का गीतगोविन्द है, जिसमें भक्ति एवं शृंगार का अद्‌भुत समावेश है। लोक-परम्परा की इसी पद्धति में चौदहवीं शताब्दी में महाकवि विद्यापति ने राधा-कृष्ण से जुड़े पदों की रचना मैथिली में की। उनकी इस पदावली को हिन्दी कृष्ण-काव्य की पहली रचना के रूप में स्वीकृति मिली। विद्यापति के बाद कृष्ण-काव्य की इस सुदीर्घ परम्परा में सबसे प्रमुख कवि सूरदास हैं। अपनी पूर्व परम्परा को आत्मसात कर सूर ने अपनी कविता में सृजन का ऐसा संसार रचा, जिससे परवर्ती कृष्ण-काव्य की परम्परा प्रशस्त हुई। उन्होंने भक्ति-काव्य में प्रेम, वात्सल्य और माधुर्य की ऐसी कविता रची, जिसकी व्याप्ति आज भी है। सूरदास के यहाँ कृष्ण के कई रूपों का चित्रण दिखता है। सूरसागर में कृष्ण के गोकुल, मथुरा, वृन्दावन की सम्पूर्ण आख्यायिका को गीति-प्रबन्ध के रूप में देखा जा सकता है। उस आख्यान की रूपरेखा पर भले ही भागवत का प्रभाव हो, परन्तु प्रसंगों का विवरण कौशलपूर्ण है। सूरदास के यहाँ कृष्ण-कथा के विभिन्न प्रसंगों का गीतिमय चित्रण किया गया है। कृष्ण के जन्म, शैशव, ग्वालों के साथ विनोद, गोचारण, बाल-लीला, गोपियों के साथ केलि-क्रीडा, छद्‌मवेष धारणकर असुरों का वध आदि प्रसंगों की मुक्तक रचनाओं का चित्रण यहाँ मनोहारी है। भक्ति-काव्य में सूर की कविता के इसी महत्त्व की ओर संकेत करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा ''जयदेव की देववाणी की पीयूष-धारा जो काल की कठोरता में दब गई थी, अवकाश पाते ही लोक-भाषा की सरसता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति, कोकिल कण्ठ में प्रगट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील कुंजों के बीच मुरझाए मनों को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठी, जिनमें सबसे सुरीली और मधुर झनकार अन्धे कवि सूरदास की वीणा की थी।''

कृष्ण-काव्य परम्परा में सूर का स्थान

हिन्दी में कृष्ण-काव्य परम्परा के उद्‌भावक कवि मैथिल कोकिल विद्यापति हैं। हिन्दी के इस कवि पर संस्कृत के कवि जयदेव के कृष्ण-काव्य, संगीत और गीत का सीधा असर है। विद्यापति के राधा-कृष्ण विषयक पदों में वर्णित कृष्ण का मथुरागमन, गोपियों का विरह, कुब्जा के प्रति कृष्ण का लगाव,

कृष्ण के विरह में गोपियों की व्याकुलता, पुरुषों की भ्रमर-वृत्ति आदि आख्यानों का सुगठित रूप ब्रज भाषा में अन्यत्र दुर्लभ है। उद्धव की उपस्थिति दोनों के काव्य में है। राधा-कृष्ण से जुड़े संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों की अनेकानेक छवियाँ हमें विद्यापति के यहाँ दिखती हैं। सूर के पद, विद्यापति की परम्परा को ही आगे बढ़ाते हुए प्रतीत होते हैं। सूर के काव्य में विद्यापति के गीतों के माधुर्य की विरासत का समावेश तो है ही, ब्रज की लोक-परम्परा से सिक्त होकर उनकी कविता अधिक उर्वर बनती है। ब्रज भाषा में प्रचलित लोक गीतों और कथाओं की परम्परा को सूर ने सहजता से संजोया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा भी है, ''बल्लभाचार्य जी की आज्ञा से सूरदास ने श्रीमद्भागवत की कथा को पदों में गाया। कृष्ण-जन्म से लेकर मथुरा जाने तक की कथा अत्यन्त विस्तार से फुटकल पदों में गाई गई है। भिन्न-भिन्न लीलाओं के प्रसंग को लेकर इस सच्चे रसमग्न कवि ने अत्यन्त मधुर और मनोहर पदों की झड़ी-सी बाँध दी है। यह रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यपूर्ण है कि आगे होने वाले कवियों की श्रृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठी-सी जान पड़ती हैं। अतः सूरसागर किसी चली आती हुई गीत-काव्य परम्परा का, चाहे वह मौखिक ही रही हो, पूर्ण विकास-सा प्रतीत होती है।''

सूर ने कृष्ण-काव्य की शास्त्रीय परम्परा, ब्रज के लोक-गीत और लोक-संस्कृति का अवगाहन कर कृष्ण काव्य का संसार रचा। वात्सल्य, बाल-लीला, माधुर्य भाव के भक्ति-काव्य द्वारा सूरदास ने कृष्ण-काव्य परम्परा को जिस ऊँचाई तक पहुँचा दिया, वहाँ तक दूसरा कवि न पहुँच सका। सूर के साथ और उनके बाद कृष्ण-काव्य की प्रशस्त दीर्घ परम्परा है। अष्टछाप के सारे कवियों का काव्य महत्व का है, लेकिन सबसे विरल स्वर सूर का है, उसके बाद नन्ददास की कविता को उनकी वाक्चतुरता और सहृदयता के लिए याद किया जाता है। भक्ति-काव्य की मार्मिक अभिव्यक्ति एवं प्रेम व प्रतिरोध मीराबाई के काव्य की विशेषता है। समर्पण और संवेदना से सिक्त मीरा के पदों में कृष्ण-भक्ति का सुन्दर रूप है। कृष्ण के प्रेम की संवेदना से मीरा ने प्रतिरोध का ऐसा संसार रचा जो स्त्री-कविता का विरल संयोग है। मीरा की भक्ति दैन्य एवं माधुर्य भाव की है। उनकी भक्ति में ईश्वर के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूप के दर्शन होते हैं। मीरा का काव्य गहन जीवनानुभूति से संपृक्त काव्य है। गिरधर-गोपाल के एकनिष्ठ प्रेम में पगी मीरा तमाम सामन्ती व्यवस्थाओं के समक्ष एक चुनौती के रूप में खड़ी होती है। उनके पदों में गुजराती, राजस्थानी

एवं ब्रजभाषा का मिश्रित रूप दृष्टिगत होता है। कृष्ण-भक्ति में इन कवियों के साथ, जिनकी कविता में कृष्ण-काव्य का वैभव विकसित हुआ, उनमें नरोत्तमदास, गोविन्दस्वामी, हरिदास और हितहरिवंश प्रमुख हैं।

रसखान कृष्ण-काव्य परम्परा के सम्प्रदाय निरपेक्ष कवि हैं। उन्होंने कृष्ण-प्रेम की उत्कट और उदात्त छवि की कविता की है। रहीम, ध्रुवदास, सुन्दरदास, धर्मदास, रसिकदास इस परम्परा के प्रमुख कवि हैं। इन कवियों पर सूर की कविताई का सीधा असर है। रीतिकाल में भी कृष्ण-भक्ति व लीला से सिक्त कविता प्रचुरता से रची गई। ग्वाल, देव, मतिराम, बिहारी, पदमाकर, घनानन्द की कविता में कृष्ण-काव्य की समृद्ध परम्परा विकसित हुई। कृष्ण की लीला का मनोहारी चित्रण रीतिकालीन कवियों ने किया है। सदानन्द की कविता तो ब्रज-भाषा प्रेम और समर्पण की मर्मस्पर्शी कविता है।

आधुनिक काल में कृष्ण-काव्य सृजन अनवरत चलता रहा। भक्ति-काल के कवियों की तरह इनके काव्य में भाव और संवेदना की वह गहराई न थी, लेकिन खड़ी बोली के समानान्तर ब्रजभाषा के अन्तिम दौर की यह कविता कृष्ण-काव्य का आधुनिक पक्ष है। भारतेन्दु की कविताई में प्रेम और भक्ति की संवेदना है। द्विवेदीयुग में तो ब्रजभाषा का कृष्ण-काव्य आधुनिक काल का सबसे सृजनशील स्वर है। सत्यनारायण कविरत्न और जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' की कविता में तो भक्तिकालीन कृष्णकाव्य के कवियों जैसी गहराई और उत्कृष्टता है। रत्नाकर का उद्धव शतक कृष्ण-काव्य परम्परा का अन्तिम सबसे महत्त्वपूर्ण काव्य-ग्रन्थ है। छायावाद में जयशंकर प्रसाद ने भी कृष्ण काव्य परम्परा में ब्रजभाषा की कविता लिखी। कृष्ण और राधा के प्रेम पर द्विवेदी युग के बाद के कवियों ने प्रायः कम लिखा है और लिखा भी है तो उसमें भक्ति भाव का अभाव है। उदहारण के लिए नयी कविता धारा के कवि धर्मवीर भारती का खंड काव्य कनुप्रिया में राधा और कृष्ण के प्रेम को आधार बनाया गया है, लेकिन यहाँ राधा की चिंता आधुनिक स्त्री की चिंता है।

कृष्ण-काव्य परम्परा में सूर ने कृष्ण के लीला रूप, सौन्दर्य और प्रेम का जैसा चित्रण किया है, वह कृष्ण-काव्य परम्परा का सबसे सृजनशील स्वर है। सरस संगीत और गीतात्मक सौन्दर्य के साथ कृष्ण केन्द्रित उनका वात्सल्य, बाललीला, भ्रमरगीत में जीवन की संवेदना और उत्सव विद्यमान है। कृष्ण-काव्य परम्परा में सूर का काव्य प्रतिनिधि है।

सूर के बारे में आचार्य शुक्ल का कथन सही है कि उन्होंने बन्द आँखों से वात्सल्य और शृंगार का जो चित्रण किया है वह कृष्ण-काव्य परम्परा का कोई और कवि न कर सका। कृष्ण-जीवन के विविध प्रसंगो का चित्रण करते हुए सूर की काव्य-दृष्टि की सहृदयता और वचन विदग्धता देखते ही बनती है। जीवन की नवीन उद्‌भावना और भावपक्ष की प्रशंसा में आचार्य शुक्ल सूर की तुलना तुलसी से करते हुए उन्हें कही-कहीं तुलसी से बड़ा कवि मानते हैं। सूर की काव्य-चेतना में जीवन के भावुक पक्ष की प्रबलता ही नहीं है, उनका काव्य 'लोकजागरण' की चेतना का काव्य है। सूर की गोपियाँ उदात्त प्रेम की छवि प्रस्तुत करती हैं। उनके प्रेम में प्रतिबद्धता है, जो सामन्ती समाज की जाति, वर्ण और संकीर्णता के बन्धन को तोड़कर मानव प्रेम का पाठ भी पढ़ाती है। नारी की स्वतन्त्रता का जैसा चित्रण सूर ने किया है, वह भक्ति-काल के अन्य कवियों के यहाँ दुर्लभ है। गीतिकाव्य की सृजनात्मकता सूर के काव्य का विशिष्ट पक्ष है। सूर ने अपने गीतात्मक काव्य में भाव और विचार का अद्‌भुत समन्वय किया है। उनसे पहले गीतात्मकता की कोई समृद्ध परम्परा न थी। सूर ने अपनी प्रतिभा से उस परम्परा को सृजनात्मक आधार प्रदान किया। सूर के गीतों की शक्ति 'लोक' से आती है। लोक की शक्ति का अवगाहन कर सूर अपने गीतिकाव्य को समृद्ध करते हैं। 'ब्रजभाषा' की सृजनात्मकता का उत्स सूर की कविता है। सूरसागर में ब्रजभाषा के बोलचाल के रूप के साथ शिष्ट और परिमार्जित रूप का उत्कृष्ट प्रयोग हुआ है। लोक से काव्य भाषा का स्रोत ग्रहण करते हुए मुहावरों, लोकोक्तियों का प्रयोग सूर की कविता का प्राण है। भाषा की वचन-विदग्धता और सहृदयता का जैसा प्रयोग भ्रमरगीत में सूर ने किया है, वह विरल है। सूर के बाद ब्रजभाषा में उनकी सृजनात्मक काव्य भाषा का सहज प्रभाव परिलक्षित होता है। रीतिकाव्य से होते हुए यह प्रभाव आधुनिक काल के ब्रजभाषा काव्य तक फैला हुआ है।

निष्कर्ष

जयदेव और विद्यापति ने कृष्ण-काव्य में गीति की जैसी प्रवाहमय धारा बहाई, उसका प्रभाव बाद के ब्रजभाषा में रचना करने वाले कृष्णाश्रयी कवियों पर पड़ा। कृष्ण की जीवन लीलाओं से जुड़े कई काव्य लिखे गए। अष्टछाप से इतर कई सम्प्रदाय हुए, जिन्होंने कृष्ण-काव्य की परम्परा को आगे बढ़ाया। कृष्ण-भक्ति को विकसित करने वाले सम्प्रदायों में शुद्धाद्वैतवाद, पुष्टिमार्ग,

राधावल्लभ सम्प्रदाय, हरिदासी सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय के प्रमुख कवियों ने अपनी कविताई से इस परम्परा को समृद्ध किया। कृष्ण काव्य परम्परा में सूर का स्थान विशिष्ट है। सूर का 'वात्सल्य', बाललीला चित्रण और भ्रमरगीत भक्ति-काव्य की उपलब्धि है। वियोग वर्णन में उनकी सहृदयता और वचन विदग्धता का चित्रण अद्वितीय है। सूर के काव्य में ब्रज की संस्कृति और समाज की सफल अभिव्यक्ति हुई है। गोचारण संस्कृति का चित्रण सूर के काव्य की विशिष्टता है। ब्रजभाषा का समस्त सृजनात्मक सौन्दर्य सूर के काव्य में समाहित हो गया है। सूरसागर एक श्रेष्ठ गीतिकाव्य भी है। सूर की कविता का भक्ति, रीति और आधुनिक काल के कवियों पर सहज प्रभाव ढूँढ़ा जा सकता है।

6

कुम्भनदास

कुम्भनदास(1468–1583) अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि थे। ये परमानंददास जी के समकालीन थे। कुम्भनदास का चरित 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार संकलित किया जाता है।

कुम्भनदास ब्रज में गोवर्धन पर्वत से कुछ दूर 'जमुनावतौ' नामक गाँव में रहा करते थे। उनके घर में खेती–बाड़ी होती थी। अपने गाँव से वे पारसोली चन्द्रसरोवर होकर श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तन करने जाते थे। उनका जन्म गौरवा क्षत्रिय कुल में हुआ था। कुम्भनदास के सात पुत्र थे, जिनमें चतुर्भजदास को छोड़कर अन्य सभी कृषि कर्म में लगे रहते थे। उन्होंने 1492 ई. में महाप्रभु वल्लभाचार्य से दीक्षा ली थी।

वे पूरी तरह से विरक्त और धन, मान, मर्यादा की इच्छा से कोसों दूर थे। एक बार अकबर बादशाह के बुलाने पर इन्हें फतेहपुर सीकरी जाना पड़ा जहाँ इनका बड़ा सम्मान हुआ। पर इसका इन्हें बराबर खेद ही रहा, जैसा कि इनके इस पद से व्यंजित होता है–

संतन को कहा सीकरी सों काम ?
आवत जात पनहियाँ टूटी, बिसरि गयो हरि नाम।।
जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिबे परी सलाम।।
कुभंनदास लाल गिरिधर बिनु और सबै बेकाम।।

परिचय

अनुमानत: कुम्भनदास जी का जन्म गोवर्धन,मथुरा के सन्निकट जमुनावतो नामक ग्राम में संवत् 1525 विक्रमी (1468 ई.) में चैत्र कृष्ण एकादशी को हुआ था। वे गोरवा क्षत्रिय थे। उनके पिता एक साधारण श्रेणी के व्यक्ति थे। खेती करके जीविका चलाते थे। कुम्भनदास ने भी पैतृक वृत्ति में ही आस्था रखी और किसानी का जीवन ही उन्हें अच्छा लगा। पारसोली में विशेष रूप से खेती का कार्य चलता था। उन्हें पैसे का अभाव आजीवन खटकता रहा पर उन्होंने किसी के सामने हाथ नहीं पसारा। भगवद्भक्ति ही उनकी सम्पत्ति थी। उनका कुटुम्ब बहुत बड़ा था, खेती की आय से उसका पालन करते थे। परिवार में इनकी पत्नी के अतिरिक्त सात पुत्र, सात पुत्र-वधुएँ और एक विधवा भतीजी थी।

दीक्षा

कुम्भनदास परम भगवद्भक्त, आदर्श गृहस्थ और महान विरक्त थे। वे नि:स्पृत, त्यागी और महासन्तोषी व्यक्ति थे। उनके चरित्र की विशिष्ट, अलौकिकता यह थी कि भगवान साक्षात प्रकट होकर उनके साथ सखा भाव की क्रीड़ाएं करते थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी उनके दीक्षा-गुरु थे। संवत् 1550 विक्रमी (1493 ई.) में आचार्य की गोवर्धन यात्रा के समय उन्होंने ब्रह्मसम्बन्ध लिया था। उनके दीक्षा-काल के पंद्रह साल पूर्व श्रीनाथ जी की मूर्ति प्रकट हुई थी, आचार्य की आज्ञा से वे श्रीनाथ जी की सेवा करने लगे थे। 'पुष्टिमार्ग' में दीक्षित तथा श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तनकार के पद पर नियुक्त होने पर भी उन्होंने अपनी वृत्ति नहीं छोड़ी और अन्त तक निर्धनावस्था में अपने परिवार का भरण-पोषण करते रहे।

श्रीनाथ जी की सेवा व गायन

श्रीनाथ जी के मन्दिर में कुम्भनदास नित्य नये पद गाकर सुनाने लगे। 'पुष्टि सम्प्रदाय' में सम्मिलित होने पर उन्हें कीर्तन की ही सेवा दी गयी थी। कुम्भनदास भगवत्कृपा को ही सर्वोपरि मानते थे, बड़े-से-बड़े घरेलू संकट में भी वे अपने आस्था-पथ से कभी विचलित नहीं हुए। श्रीनाथ जी केशृंगार सम्बन्धी पदों की रचना में उनकी विशेष अभिरुचि थी। एक बार वल्लभाचार्य जी ने उनके युगल लीला सम्बन्धी पद से प्रसन्न होकर कहा

था कि-'तुम्हें तो निकुंज लीला के रस की अनुभूति हो गयी।' कुम्भनदास महाप्रभु की कृपा से गद्‌गद होकर बोल उठे कि-'मुझे तो इसी रस की नितान्त आवश्यकता है।'

महाप्रभु वल्लभाचार्य के लीला-प्रवेश के बाद कुम्भनदास गोसाईं विट्‌ठलनाथ के संरक्षण में रहकर भगवान का लीला-गान करने लगे। विट्‌ठलनाथ महाराज की उन पर बड़ी कृपा थी। वे मन-ही-मन उनके निर्लोभ जीवन की सराहना किया रते थे। संवत् 1602 विक्रमी में 'अष्टछाप के कवियों' में उनकी गणना हुई। बड़े-बड़े राजा-महाराजा आदि कुम्भनदास का दर्शन करने में अपना सौभाग्य मानते थे। वृन्दावन के बड़े-बड़े रसिक और सन्त महात्मा उनके सत्संग की उत्कृष्ट इच्छा किया करते थे। उन्होंने भगवद्‌भक्ति का यश सदा अक्षुण्ण रखा, आर्थिक संकट और दीनता से उसे कभी कलंकित नहीं होने दिया।

भगवान श्रीनाथ से स्नेह

एक बार श्रीविट्‌ठलनाथ जी उन्हें अपनी द्वारका यात्रा में साथ ले जाना चाहते थे, उनका विचार था कि वैष्णवों की भेंट से उनकी आर्थिक परिस्थिति सुधर जाएगी। कुम्भनदास श्रीनाथ जी का वियोग एक पल के लिये भी नहीं सह सकते थे, पर उन्होंने गोसाईं जी की आज्ञा का विरोध नहीं किया। वे गोसाईं जी के साथ अप्सरा कुण्ड तक ही गये थे कि श्रीनाथ जी के सौंदर्य स्मरण से उनके अंग-अंग सिहर उठे, भगवान की मधुर-मधुर मन्द मुस्कान की ज्योत्स्ना विरह-अन्धकार में थिरक उठी, माधुर्यसम्राट नन्दनन्दन की विरह वेदना से उनका हृदय घायल हो चला। उन्होंने श्रीनाथ जी के वियोग में एक पद गाया-

केते दिन जु गए बिनु देखैं।
तरुन किसोर रसिक नँदनंदन, कछुक उठति मुख रेखैं॥
वह सोभा, वह कांति बदन की, कोटिक चंद बिसेखैं।
वह चितवन, वह हास मनोहर, वह नटवर बपु भेखैं॥
स्याम सुँदर सँग मिलि खेलन की आवति हिये अपेखैं।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर बिनु जीवन जनम अलेखैं॥

श्रीगोसाईं जी के हृदय पर उनके इस विरह गीत का बड़ा प्रभाव पड़ा। वे नहीं चाहते थे कुम्भनदास पल भर के लिये भी श्रीनाथ जी से अलग रहें। कुम्भनदास को उन्होंने लौटा दिया। श्रीनाथ जी का दर्शन करके कुम्भनदास स्वस्थ हुए।

अकबर के समक्ष गायन

एक बार मुगल बादशाह अकबर की राजसभा में एक गायक ने कुम्भनदास का पद गाया। बादशाह ने उस पद से आकृष्ट होकर कुम्भनदास को फतेहपुर सीकरी बुलाया। पहले तो कुम्भनदास जाना नहीं चाहते थे, पर सैनिक और दूतों का विशेष आग्रह देखकर वे पैदल ही गये। श्रीनाथ जी के सभा सदस्य को अकबर का ऐश्वर्य दो कौड़ी का लगा। कुम्भनदास की पगड़ी फटी हुई थी, तनिया मैली थी, वे आत्मग्लानि में डूब रहे थे कि किस पाप के फलस्वरूप उन्हें इनके सामने उपस्थित होना पड़ा। बादशाह ने उनकी बड़ी आवभगत की, पर कुम्भनदास को तो ऐसा लगा कि किसी ने उनको नरक में लाकर खड़ा कर दिया है। वे सोचने लगे कि राजसभा से तो कहीं उत्तम ब्रज है, जिसमें स्वयं श्रीनाथ जी खेलते रहते हैं, अनेकों क्रीड़ाएं करते करते रहते हैं। अकबर ने पद गाने की प्रार्थना की। कुम्भनदास तो भगवान श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य-माधुर्य के कवि थे, उन्होंने पद-गान किया-

भगत को कहा सीकरी काम।
आवत जात पन्हैयां टूटीं, बिसरि गयो हरिनाम॥
जाको मुख देखैं दुख लागै, ताको करनो पर्यो प्रनाम।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर बिनु और सबै बेकाम॥
बादशाह सहृदय थे, उन्होंने आदरपूर्वक उनको घर भेज दिया।

मानसिंह द्वारा सराहना

संवत् 1620 विक्रमी में महाराज मानसिंह ब्रज आये थे। उन्होंने वृन्दावन के दर्शन के बाद गोवर्धन की यात्रा की। श्रीनाथ जी के दर्शन किये। उस समय मृदंग और वीणा के साथ कुम्भनदास जी कीर्तन कर रहे थे। राजा मानसिंह उनकी पद-गान शैली से बहुत प्रभावित हुए। वे उनसे मिलने जमुनावतो गये। कुम्भनदास की दीन-हीन दशा देखकर वे चकित हो उठे। कुम्भनदास भगवान के रूप-चिन्तन में ध्यानस्थ थे। आंख खुलने पर उन्होंने भतीजी से आसन और दर्पण मांगे, उत्तर मिला कि 'आसन (घास) पड़िया खा गयी, दर्पण (पानी) भी पी गयी।' आशय यह था कि पानी में मुख देखकर वे तिलक करते थे। महाराजा मानसिंह को उनकी निर्धनता का पता लग गया। उन्होंने सोने का दर्पण देना चाहा, भगवान के भक्त ने अस्वीकार कर दिया, मोहरों की थैली देनी चाही, विश्वपति

के सेवक ने उसकी उपेक्षा कर दी। चलते समय मानसिंह ने जमुनावतो गांव कुम्भनदास के नाम करना चाहा, पर उन्होंने कहा कि 'मेरा काम तो करील के पेड़ और बेर के वृक्ष से ही चल जाता है।' राजा मानसिंह ने उनकी निःस्पृहता और त्याग की सराहना की, उन्होंने कहा कि 'माया के भक्त तो मैंने बहुत देखे हैं, पर वास्तविक भगवद्भक्त तो आप ही हैं।'

शरीर त्याग

वृद्धावस्था में भी कुम्भनदास नित्य जमुनावतो से श्रीनाथ जी के दर्शन के लिये गोवर्धन आया करते थे। एक दिन संकर्षण कुण्डी पर आन्योदर के निकट वे ठहर गये। 'अष्टछाप' के प्रसिद्ध कवि चतुर्भुजदास जी, उनके छोटे पुत्र के साथ थे। उन्होंने चतुर्भुजदास से कहा कि 'अब घर चलकर क्या करना है। कुछ समय बाद शरीर ही छूटने वाला है।' गोसाईं विट्ठलनाथ जी उनके देहावसान के समय उपस्थित थे। गोसाईं जी ने पूछा कि 'इस समय मन किस लीला में लगा है?' कुम्भनदास ने कहा-लाल तेरी चितवन चितहि चुरावै और इसके अनन्तर युगल स्वरूप की छवि के ध्यान में पद गाया-

रसिकनी रस में रहत गड़ी।
कनक बेलि बृषभानुनंदिनी स्याम तमाल चढ़ी॥
बिहरत श्रीगिरिधरन लाल सँग, कोने पाठ पढ़ी।
'कुंभनदास' प्रभु गोबरधनधर रति रस केलि बढ़ी॥'

उन्होंने शरीर छोड़ दिया। गोसाईं जी ने करुण स्वर से श्रद्धांजलि अर्पित की कि ऐसे भगवदीय अन्तर्धान हो गये। वास्तव में कुम्भनदास जी निःस्पृहता के प्रतीक थे, त्याग और तपस्या के आदर्श थे, परम भगवदीय और सीधे-सादे गृहस्थ थे। संवत् 1639 विक्रमी तक वे एक सौ तेरह साल की उम्र पर्यन्त जीवित रहे।

रचनायें

कुम्भनदास के पदों की कुल संख्या जो 'राग-कल्पद्रुम' 'राग-रत्नाकर' तथा सम्प्रदाय के कीर्तन-संग्रहों में मिलते हैं, 500 के लगभग हैं। इन पदों की संख्या अधिक है।

जन्माष्टमी, राधा की बधाई, पालना, धनतेरस, गोवर्द्धनपूजा, इन्द्रमानभंग, संक्रान्ति, मल्हार, रथयात्रा, हिंडोला, पवित्र, राखी वसन्त, धमार आदि के पद

इसी प्रकार के है। कृष्णलीला से सम्बद्ध प्रसंगों में कुम्भनदास ने गोचार, छाप, भोज, बीरी, राजभोग, शयन आदि के पद रचे हैं, जो नित्यसेवा से सम्बद्ध हैं।

इनके अतिरिक्त प्रभुरूप वर्णन, स्वामिनी रूप वर्णन, दान, मान, आसक्ति, सुरति, सुरतान्त, खण्डिता, विरह, मुरली रुक्मिणीहरण आदि विषयों से सम्बद्ध श्रृंगार के पद भी हैं।

कुम्भनदास ने गुरुभक्ति और गुरु के परिजनों के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए भी अनेक पदों की रचना की। आचार्य जी की बधाई, गुसाईं जी की बधाई, गुसाईं जी के पालना आदि विषयों से सम्बद्ध पद इसी प्रकार के हैं। कुम्भनदास के पदों के उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इनका दृष्टिकोण सूर और परमानन्द की अपेक्षा अधिक साम्प्रदायिक था। कवित्त की दृष्टि से इनकी रचना में कोई मौलिक विशेषताएँ नहीं हैं। उसे हम सूर का अनुकरण मात्र मान सकते हैं

कुम्भनदास के पदों का एक संग्रह 'कुम्भनदास' शीर्षक से श्रीविद्या विभाग, कांकरोली द्वारा प्रकाशित हुआ है।

7

चतुर्भुजदास

चतुर्भुजदास की वल्लभ सम्प्रदाय के भक्त कवियों में गणना की जाती है।

जीवन परिचय

ये कुम्भनदास के पुत्र और गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य थे। डॉ. दीन दयाल गुप्त के अनुसार इनका जन्म वि 0 सं 0 1520 और मृत्यु वि 0 सं 0 1624 में हुई थी। इनका जन्म जमुनावती गांव में गौरवा क्षत्रिय कुल में हुआ था। वार्ता के अनुसार ये स्वभाव से साधु और प्रकृति से सरल थे। इनकी रुचि भक्ति में आरम्भ से ही थी। अत: भक्ति भावना की इस तीव्रता के कारण श्रीनाथ जी के अन्तरंग सखा बनने का सम्मान प्राप्त कर सके।

रचनाएँ

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** ने अपने-अपने साहित्य के इतिहास के ग्रन्थ में निम्न रचनाओं का उल्लेख किया है–

द्वादश यश,
हित जू को मंगल,
भक्ति प्रकाश,
इसके अतिरिक्त कुछ स्फुट पद।

माधुर्य भक्ति का वर्णन

चतुर्भुजदास के आराध्य नन्दनन्दन श्रीकृष्ण हैं। रूप, गुण और प्रेम सभी दृष्टियों से ये भक्त का मनोरंजन करने वाले हैं। इनकी रमणीयता भी विचित्र है,नित्यप्रति उसे देखिये तो उसमें नित्य नवीनता दिखाई देगी–

माई री आज और काल्ह और,
दिन प्रति और,देखिये रसिक गिरिराजबरन।
दिन प्रति नई छवि बरणै सो कौन कवि,
नित ही शृंगार बागे बरत बरन॥
शोभासिन्धु श्याम अंग छवि के उठत तरंग,
लाजत कौटिक अनंग विश्व को मनहरन।
चतुर्भुज प्रभु श्री गिरधारी को स्वरूप,
सुधा पान कीजिये जीजिए रहिये सदा ही सरन॥

प्रेम के क्षेत्र में भक्तों के लिए आदर्श गोपियाँ भी श्रीकृष्ण की रूप माधुरी से मुग्ध हैं। उसकी सुन्दर छवि को देखकर गोपियों का तन मन सभी कुछ पराया हो जाता है। वे सदा श्रीकृष्ण के दर्शन करना चाहती हैं। इसी से उनके मन का संताप दूर होता है। श्रीकृष्ण से वे लोक-लाज,कुल के नियम एवं बन्धन सब तोड़कर मिलना चाहती हैं–

तब ते और न कछु सुहाय।
सुन्दर श्याम जबहिं ते देखे खरिक दुहावत गाय॥
आवति हुति चली मारग सखि, हौं अपने सति भाय।
मदन गोपाल देखि कै इकटक रही ठगी मुरझाय॥
बिखरी लोक लाज यह काजर बंधु अरु भाय।
दास चतुर्भुज प्रभु गिरिवरधर तन मन लियो चुराय॥

गोपियों के मन को वश में करने में कृष्ण की रूप माधुरी के साथ-साथ उनके गुण तथा मुरली माधुरी का भी पूर्ण प्रभाव पड़ता है। मुरली माधुरी तो चेतन-अचेतन सभी को अपनी तान से मुग्ध कर देती है। अतः बन में जाती हुई गोपी के कान में पहुँचकर सप्त-स्वर बंधान युक्त मुरली की ध्वनि यदि अपना प्रभाव डालती हो तो आश्चर्य क्या–

बेनु धरयो कर गोविन्द गुन निधान।
जाति हुति बन काज सखिन संग ठगी धुनि सुनि कान॥
मोहन सहस कल खग मृग पसु बहु बिधि सप्तक सुर बंधान।
चतुर्भुजदास प्रभु गिरिधर तन मन चोरि लियो करि मधुर गान॥

8

स्वामी हरिदास

स्वामी हरिदास भक्त कवि, शास्त्रीय संगीतकार तथा कृष्णोपासक सखी संप्रदाय के प्रवर्तक थे, जिसे 'हरिदासी संप्रदाय' भी कहते हैं। इन्हें ललिता सखी का अवतार माना जाता है। इनकी छाप रसिक है। इनके जन्म स्थान और गुरु के विषय में कई मत प्रचलित हैं। इनका जन्म समय कुछ ज्ञात नहीं है। हरिदास स्वामी वैष्णव भक्त थे तथा उच्च कोटि के संगीतज्ञ भी थे। प्रसिद्ध गायक तानसेन इनके शिष्य थे। सम्राट अकबर इनके दर्शन करने वृंदावन गए थे। 'केलिमाल' में इनके सौ से अधिक पद संग्रहित हैं। इनकी वाणी सरस और भावुक है। ये प्रेमी भक्त थे।

जीवन परिचय

श्री बांकेबिहारीजी महाराज को वृन्दावन में प्रकट करने वाले स्वामी हरिदासजी का जन्म विक्रम सम्वत् 1535 में भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी (श्री राधाष्टमी) के ब्रह्म मुहूर्त में हुआ था। आपके पिता श्री आशुधीर जी अपने उपास्य श्रीराधा-माधव की प्रेरणा से पत्नी गंगादेवी के साथ अनेक तीर्थों की यात्रा करने के पश्चात् अलीगढ़ जनपद की कोल तहसील में ब्रज आकर एक गांव में बस गए। हरिदास जी का व्यक्तित्त्व बड़ा ही विलक्षण था। वे बचपन से ही एकान्त-प्रिय थे। उन्हें अनासक्त भाव से भगवद्-भजन में लीन रहने से बड़ा आनंद मिलता था। हरिदासजी का कण्ठ बड़ा मधुर था और उनमें

संगीत की अपूर्व प्रतिभा थी। धीरे-धीरे उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई। उनका गांव उनके नाम से विख्यात हो गया। हरिदास जी को उनके पिता ने यज्ञोपवीत-संस्कार के उपरान्त वैष्णवी दीक्षा प्रदान की। युवा होने पर माता-पिता ने उनका विवाह हरिमति नामक परम सौंदर्यमयी एवं सद्‌गुणी कन्या से कर दिया, किंतु स्वामी हरिदास जी की आसक्ति तो अपने श्यामा-कुंजबिहारी के अतिरिक्त अन्य किसी में थी ही नहीं। उन्हें गृहस्थ जीवन से विमुख देखकर उनकी पतिव्रता पत्नी ने उनकी साधना में विघ्न उपस्थित न करने के उद्देश्य से योगाग्नि के माध्यम से अपना शरीर त्याग दिया और उनका तेज स्वामी हरिदास के चरणों में लीन हो गया।

वृन्दावन प्रस्थान

विक्रम सम्वत् 1560 में पच्चीस वर्ष की अवस्था में हरिदास वृन्दावन पहुंचे। वहां उन्होंने निधिवन को अपनी तपोस्थली बनाया। हरिदास जी निधिवन में सदा श्यामा-कुंजबिहारी के ध्यान तथा उनके भजन में तल्लीन रहते थे। स्वामीजी ने प्रिया-प्रियतम की युगल छवि श्री बांकेबिहारीजी महाराज के रूप में प्रतिष्ठित की। हरिदासजी के ये ठाकुर आज असंख्य भक्तों के इष्टदेव हैं। वैष्णव स्वामी हरिदास को श्रीराधा का अवतार मानते हैं। श्यामा-कुंजबिहारी के नित्य विहार का मुख्य आधार संगीत है। उनके रास-विलास से अनेक राग-रागनियां उत्पन्न होती हैं। ललिता संगीत की अधिष्ठात्री मानी गई हैं। ललितावतार स्वामी हरिदास संगीत के परम आचार्य थे। उनका संगीत उनके अपने आराध्य की उपासना को समर्पित था, किसी राजा-महाराजा को नहीं। बैजूबावरा और तानसेन जैसे विश्व-विख्यात संगीतज्ञ स्वामी जी के शिष्य थे। मुगल सम्राट अकबर उनका संगीत सुनने के लिए रूप बदलकर वृन्दावन आया था। विक्रम सम्वत 1630 में स्वामी हरिदास का निकुंजवास निधिवन में हुआ।

सखी-सम्प्रदाय

स्वामी जी ने एक नवीन पंथ सखी-सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। उनके द्वारा निकुंजोपासना के रूप में श्यामा-कुंजबिहारी की उपासना-सेवा की पद्धति विकसित हुई, यह बडी विलक्षण है। निकुंजोपासना में जो सखी-भाव है, वह गोपी-भाव नहीं है। निकुंज-उपासक प्रभु से अपने लिए कुछ भी नहीं चाहता, बल्कि उसके समस्त कार्य अपने आराध्य को सुख प्रदान करने हेतु होते हैं। श्री

निकुंजविहारी की प्रसन्नता और संतुष्टि उसके लिए सर्वोपरि होती है। राधाष्टमी के पावन पर्व में स्वामी हरिदास का पाटोत्सव (जन्मोत्सव) वृन्दावन में बड़े धूमधाम के साथ मनाया जाता है। सायंकाल मंदिर से चाव की सवारी निधिवन में स्थित उनकी समाधि पर जाती है। ऐसा माना जाता है कि ललितावतार स्वामी हरिदास की जयंती पर उनके लाडिले ठाकुर बिहारीजी महाराज उन्हें बधाई देने श्रीनिधिवन पधारते हैं। देश के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ निधिवन में स्वामीजी की समाधि के समक्ष अपना संगीत प्रस्तुत करके उनका आशीर्वाद लेते हैं।

हरिदास सम्प्रदाय

वृन्दावन के आधुनिक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सम्प्रदायों में से एक उल्लेखनीय सम्प्रदाय है–हरिदास सम्प्रदाय, जिसकी संस्थापना स्वामी हरिदास द्वारा हुई थी। वृन्दावनस्थ आधुनिक मन्दिरों में विशिष्ट एक प्रख्यात मन्दिर है, जो श्री बाँके बिहारी जी के मन्दिर के नाम से लोक विश्रुत है। यह गुंसाई जी तथा उनके वशधरों के आधिपत्य में है। इस वंश परम्परा के लोगों की संख्या 19 वीं सदी में लगभग 500 थी। श्रीकृष्ण को समर्पित यह मन्दिर हरिदासी संप्रदाय का मुख्यावास मात्र ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण भारत में यह एक मात्र मन्दिर है, जिस पर गोस्वामियों का एकाधिकार है। सत्तर हजार रुपयों की धनरशि से इनका पुनर्निर्माण निकट अतीत में ही हुआ। यह निधि दूर पास के यजमानों से तेरह वर्ष के अन्तराल में एकत्र की थी। सामान्य किन्तु अत्यन्त सारभूत स्वरूप के लाल पत्थर से निर्मित इस विशद वर्गाकार मन्दिर का प्रमुख केन्द्रीय द्वार संगमरमर से बना हुआ है, जो अत्यन्त प्रभावशाली है। यह भवन निर्माण शिल्प का एक प्रसन्न आदर्श प्रस्तुत करता है। यह सभ्य संसार के ऐसे कतिपय स्थानों में से एक है, जहाँ भारतीय शिल्प मृत अतीत की परिश्रम साध्य प्रति कृति मात्र न होकर एक जीवन्त कला है, जो निरन्तर स्वतः ही विकास की प्रक्रिया में प्रबर्द्धमान है। गुसाइयों के वंशानुक्रमानुसार यह सम्पत्ति दो भागों में विभक्त हुई। उसका एक भाग स्वयं एक ब्रह्मचारी का था, किन्तु उसके भ्राता जगन्नाथ के मेघश्याम, मुरारीदास और गोपीनाथदास नामक तीन पुत्र थे, जिनमें से तीसरे निःसन्तान दिवंगत हो गये। शेष दोनों भाई वर्त्तमान वंश परम्परा के पूर्वज थे। जैसा कि ऐसे प्रकरणों में सामान्यतः होता है, दोनों परिवार परस्पर संघर्षरत रहने लगे। एकाधिक बार शान्तिभंग होने की गम्भीर स्थिति के निवारणार्थ शासन को कानून की सहायता लेने को विवश होना पड़ा। अपने

पूर्वज की महानता के परे कतिपय गुंसाई ही सम्मान के अधिकारी होने का दावा कर सकते थे। या तो अपने वैदुष्य के कारण या अपनी नैतिकता की सटीकता के कारण, क्योंकि उनमें से बहुसंख्यक पढ़ लिख नहीं सकते थे। सामान्यत: उसके दो दावेदार थे। प्रत्येक 'बट' के लिये एक-एक। ये थे गुसाई जगदीश और किशोर चन्द्र। सम्प्रदाय के साहित्य की संकीर्ण सीमाओं में ये दोनों ही पक्ष अच्छे पढ़े लिखे थे।

हरिदास के सन्दर्भ में नाभा जी के मूल भक्तमाल में निम्नोक्त छन्द है–

आशधीर उद्योत कर रसिक छाप हरिदास की।
जुगल नाम सौं नैम जपत नित कुंज बिहारी,
अविंलोकित रहैं केलि सखी सुख को अधिकारी।
गान कला गंधर्व श्याम श्यामा को तोषें,
उत्तम भोग लगाय मोर मरकट तिमि पोषें।
नृपति द्वार ठाड़े रहें दरशन आशा जासकी,
आशधीर उद्योत कर रसिक छाप हरिदास की।

इसके पश्चात् प्रियादास की टिप्पणिका या अनुपूरक इस प्रकार है–

टीका

श्री स्वामी हरिदास रास राशि को बषांनि सकै,
रसिकता की छाप कोई जाप मधि पाई है।
ल्यायौ कोऊ चोवा ताकौ अति मन भोवा वामै,
डारयौ लै पुलनि यह खोवा हिय आइयै।
जानि के सुजान कही लै दिषावौ लाल प्यारे,
नैसिकु उघारे पट सुगन्ध बुड़ाइयै।
पारस पषांन करि जल डरबाइ दियौ,
कियौ तब शिष्य अंसैं नाना विधि गाइयै।

अन्य तथ्य

कदाचित इसे सभी मानेगे कि इस विशिष्ट छन्द में शिष्य अपने गुरु से अधिक अस्पष्ट रहा है। भक्त सिंधु ने उक्त दोनों छन्दों का 211 पदों की कविता में विशदीकरण किया है तथा समस्त भ्रमों की कुंजी निम्नांकित विवरण में प्रदान की है-

कोल (अलीगढ़ का प्राचीन नाम) के समीपस्थ एक गाँव में, जो अब हरिदासपुर कहलाता है, एक सनाढ्य ब्राह्मण ब्रह्मधीर के जानधीर नामक एक सुपुत्र था। जिसके हृदय में गिरि धारण करने वाले श्रीकृष्ण के गिरधारी स्वरूप के प्रति विशेष समर्पण (भक्ति) भाव जाग्रत था और इस प्रकार उसने गोवर्धन के पावन पर्वत की अनेक तीर्थ यात्रायें की थी। इसी प्रकार के एक अवसर पर उसने आशधीर रखा। अन्ततः आशधीर ने वृन्दावन के समीप स्थित एक छोटे से गाँव राजपुर के गंगाधर ब्राह्मण की आत्मजा से विवाह किया, जिसने संवत् 1441 विक्रमी के भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को हरिदास को जन्म दिया। अपनी निपट शैशवावस्था से ही उसने अपनी भावी पवित्रता के संकेत दिये और अन्य बालकों के साथ खेलने के स्थान पर वह निरन्तर प्रार्थना और ध्यान में लगा रहता था। अपने माता पिता के अनुरोधों के परे उसने ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया और 25 वर्ष की आयु में वृन्दावन के सामने यमुना के बायें किनारे स्थित एक प्राकृतिक झील मानसरोवर पर एक एकान्तिक कुटी में रहने लगा। हरिदास तदनन्तर वृन्दावनस्थ निधिवन में चले गये और यहाँ उन्होंने विट्ठलविपुल को औपचारिक रूप से अपना शिष्य बनाया, जो उनके स्वयं के मातुल थे। शीघ्रमेव हरिदास जी की ख्याति दूर दूर तक फैल गई और उनके अनेक दार्शनार्थियों में से दिल्ली से दयालदास नामक एक खत्री एक दिन आया, जिसे अनायास दार्शनिक पारस का पत्थर प्राप्त हुआ, जो सम्पर्क में आई प्रत्येक वस्तु को सोने में रूपान्तरित कर देता था। उसने यह पत्थर एक महान् निधि के रूप में स्वामी जी को भेंट किया। स्वामी जी ने वह यमुना में फेंक दिया। दाता के प्रवोधन को देखकर स्वामी जी उसे यमुना किनारे ले गये और उसे मुट्ठी भर रेती जल में से निकालने का आदेश दिया। जब उसने वैसा ही किया तो प्रत्येक कण उसी तरह की प्रतिकृति प्रतीत हुई, जो फेंक दिया गया था और जब परीक्षण किया तो वह उन्हीं गुणों से सम्पन्न पाया गया। तब खत्री की समझ में आया कि सन्तों को भौतिक सम्पदा की कोई आवश्यकता नहीं है, लेकिन वे स्वयमेव परिपूर्ण होते हैं। तदनन्तर वह स्वामी हरिदास के शिष्यों में सम्मिलित हो गया।

यह सुनकर कि साधु को दार्शनिक का पत्थर भेंट किया गया है, एक दिन जब स्वामी जी स्नान कर रहे थे, कुछ चोरों ने शालिग्राम को चुराने का अवसर पा लिया। उन्होंने सोचा कदाचित यही वह (पत्थर) हो। अपने उद्देश्य हेतु व्यर्थ जानकर उन्होंने (चोरों ने) उसे एक झाड़ी में फेंक दिया। जैसे ही सन्त उसकी खोज में उस स्थान से होकर निकले शालिग्राम की वाणी सुनाई दी कि मैं यहाँ

हूँ। उसी समय से प्रत्येक प्रातःकाल किसी चामत्कारिक माध्यम से स्वामी जी को नित्य एक स्वर्ण-मुद्रा प्राप्त होने लगी जिससे वे मन्दिर का भोग लगाते और जो बचता था, उससे वे अन्न क्रय करते, जिसे वे यमुना में मछलियों को और तट पर मोर और वानरों को खिलाते थे।

एक दिन एक कायस्थ ने एक सहस्त्र रुपये मूल्य के 'अतर' की बोतल भेंट की और यह देखकर जड़ीभूत हो गया कि स्वामी जी ने उपेक्षा भाव से उसे भूमि पर पटक दिया, जिससे बोतल टूट गई और बहुमूल्य 'अतर' सब नष्ट हो गया। परन्तु जब उसे मन्दिर ले जाया गया तो उसने पाया कि भेंट भगवान द्वारा स्वीकृत हो गई है, क्योंकि पूरा मन्दिर भवन इत्र की सुगन्धि से महक रहा था।

दिल्ली के सम्राट् के एक बिगड़ा हुआ मूर्ख बेटा था, जो अपमानपूर्वक वहाँ से निकाल दिया गया था। अपनी घुमक्कड़ी में संयोगवश वह वृन्दावन आ निकला और वहाँ सड़क पर सो गया। उषाकाल में स्वामी जी जब निधिबन से स्नानार्थ जा रहे थे, तो उससे टकरा गये और उसकी कहानी सुनकर उसका तानसेन नाम रख दिया और मात्र अपनी इच्छा शक्ति के प्रयोग से उसे एक अप्रतिम संगीतज्ञ के रूप में परिवर्तित कर दिया। उसके दिल्ली लौटने पर सम्राट् उसकी विलक्षणता पर आश्चर्य विजडित रह गया और उसने वृन्दावन यात्रा की तथा उस गुरु के दर्शन करने की ठान ली, जिससे उसने शिक्षा ग्रहण की थीं तदनुसार, जब वह आगरा आया, तो वह मथुरा चला गया तथा भतरौंद तक आधे मार्ग घोड़े पर और वहाँ से पैदल निधिबन तक गया। सन्त ने अपने पुराने शिष्य का गरिमापूर्वक स्वागत किया और उसके शाही सी को देखा भी नहीं, यद्यपि वह जानते थे कि वह कौन है। अन्ततः जब सम्राट् ने निरन्तर कुछ करने योग्य सेवा की अभ्यर्थना की तो उसे वह समीपस्थ बिहारी घाट ले गये, जो वर्त्तमान में ऐसा लग रहा था जैसे कि प्रत्येक सीढ़ी बहुमूल्य स्वर्ण जड़ित पत्थर की हो और एक सीढ़ी में कुछ कमी दिखाते हुए सम्राट् से कहा कि उसके स्थान पर दूसरी रखवा दें। यह कार्य महान् सम्राट् की भी शक्ति से परे था। सम्राट् ने पवित्र वानरों और मयूरों के पोषणार्थ छोटा सा अनुदान देकर तुष्टि पाई और वह प्रभूत सदुपदेश प्राप्त करके अपने मार्ग चला गया।

स्वामी हरिदास के जीवन में अन्य किसी घटना का उल्लेख अभिलिखित नहीं मिलता। उनके अनन्तर उनके उत्तराधिकारी उनके मातुल विट्ठल विपुल और उनके पश्चात् बिहारीदास हुए। बिहारीदास प्रेम उन्माद में इतने निमग्न हो गये कि मन्दिर के प्रशासनार्थ जगन्नाथ नामक एक पंजाबी सारस्वत ब्राह्मण बुलाया

गया। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके अनेक उत्तराधिकारी आते गये, जिसे लिखना अनावश्यक प्रतीत होता है।

यही भक्तसिन्धु का विवरण है, जो भक्तमाल के दोनों अस्पष्ट संकेतों–अतर और दार्शनिक पत्थर, वानरों और मोरों के नित्य खिलाने और सम्राट् की वृन्दावन यात्रा–का स्पष्टीकरण प्रदान करता है। अन्य विषयों में स्वामी जी के उत्तराधिकारियों द्वारा स्वीकृत परम्पराओं से यह मेल नहीं खाता, क्योंकि उनका कथन है कि वह सनाढ्य नहीं प्रत्युत सारस्वत थे, यह कि उनका परिवार कोल या जलेसर से नहीं, प्रत्युत मुलतान के पास ऊछ से आया था और यह कि वह चार शताब्दी पूर्व नहीं, प्रत्युत अधिक से अधिक मात्र तीन शताब्दी पूर्व हुए थे। प्रतीत होता है कि भक्तसिन्धु का लेखक जाति में संघभेद का पक्षधर था, उसने तथ्यों को तदनुसार तोड़ मरोड़ लिया है, क्योंकि जगन्नाथ, जिसे वह कोल से बुलाता है, उसका नाम महन्तों की मूल तालिका में नहीं है। तिथियों के सम्बन्ध में वह नितान्त असफल रहा है। संवत् 1441–संवत् 1537 विक्रमी। वह स्पष्ट है, क्योंकि जिस सम्राट ने वृन्दावन यात्रा की थी, वह निश्चय ही अकबर था और वह संवत् 1612 तक सिंहासनारूढ़ नहीं हुआ था। यह ठीक है कि **प्रोफेसर विलसन** अपने ग्रन्थ 'हिन्दुओं के धार्मिक सम्प्रदाय' में वर्णन करते हैं कि हरिदास चैतन्य के शिष्य और सत्यनिष्ठ साथी थे। चैतन्य का जन्म सन् 1485 ई. और शरीरान्त सन् 1527 ई. में हुआ। लेकिन, यद्यपि हरिदास ने चैतन्य के उपदेशों की भावना का समाहार किया था, फिर भी इस धारणा का कोई कारण नहीं कि उन दोनों के मध्य कोई वार्त्तालाप हुआ होगा। यदि ऐसा होता तो यह तथ्य भक्तमाल या उसके आधुनिक व्याख्याकारों से शायद ही छूट पाता।

ग्राउस के विचार

मेरे (ग्राउस) पास 680 पृष्ठों की एक छोटी पोथी हैं, जिसमें संस्थापक से लेकर इस हस्तलेख की तिथि संवत् 1825 तक के समस्त महन्तों की तथा उनके लेखों की तालिका है। सूची यह है–

स्वामी हरिदास,
विट्ठल विपुल,
बिहारिनदास,
नागरीदास,
सरसदास,

नवलदास,
नरहरदास,
रसिकदास तथा
ललितकिशोर (ललितमोहनीदास)।

प्रत्येक महन्ती के लिये बीस वर्ष रखे जायें, जो एक ऊँचा औसत है, क्योंकि इस पद पर एक वयस्क व्यक्ति का चयन होता है, स्वामी हरिदास के शरीरान्त की तिथि मात्र संवत् 1665 विक्रमी ठहरती है। उनकी रचनाएँ शैली में तुलसीदास की कविता से अधिक पूर्ववर्ती नहीं हैं, जिनका देहावसान संवत् 1680 में हुआ था। अतः प्रत्येक दशा में निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे अकबर और जहाँगीर के शासनकाल में ईसवी की सोलहवीं शती के अन्त और सत्रहवीं शती के आरम्भ में विद्यमान रहे। उपरिलिखित सूची में प्रत्येक महन्त अपने पूर्ववर्ती महन्त का शिष्य उल्लिखित है और प्रत्येक ने कुछ भक्ति कविताएँ लिखी, जिन्हें साखी, चौबोला या पद कहा जाता है। सर्वाधिक मात्र में लिखने वाले लेखक बहारिनदास हैं, जिनके पद 684 पृष्ठों का कलेवर भरते हैं। उनमें से अनेक पदों में अतिशयातिरेक में वे रहस्यात्मक भक्ति को अभिव्यक्त करते हैं, जो दिव्यभाव की अपेक्षा भौतिकता की द्योतक हैं। किन्तु निम्नोक्त उद्धरण सर्वथा पृथक् प्रकृति का है। यह स्वामी हरिदास के देहावसान की तिथि का अनुमोदन करने की दिशा में अधिक सहायक है, जो ऊपर निष्कर्षित है, क्योंकि इसमें सम्राट् अकबर और उसके प्रसिद्ध मित्र बीरबल की मृत्यु का नाम से उल्लेख है, जो सन् 1590 ई. में हुई थी।

राग गोरी

कहा गर्वे रे मृतक नर।
स्वान स्यार की खान पांन तन अंठि चलत रे निलज निडर।
यहै अवधि जग विदित जग बांभन बड़े भये बीरबर।
मरत दूष्यौं हियौ न जियौ किसी न सहाइ अकबर।
स्वासन निकसत सुर असुर रषि गेंथि काल करतर।
इतहि न उतहि बीच ही भूल्यों है फिरत कौंन कौ थर।
सुखद सरन हरिचरन कमल भजि बादि फिरत भटकत घर घर।
श्री बिहारीदास हरिदास विपुलबल लटकि लग्यौ संग सर्वोपर।

संप्रदाय के संस्थापक की 'साधारण सिद्धान्त' और 'रास के पद' शीर्षक 41 पृष्ठों की केवल दो छोटी रचनाएँ हैं। पहली अपने मूल पाठ में नीचे उद्धृत की जाती है। मन्दिर के सभी भक्तों को इसका बहुलांश कंठस्थ है, यद्यपि निश्चयपूर्वक जान लिया गया कि उनमें से विरले ही इसके सामान्य अर्थ से आगे अधिक जानते हैं। किशोरचन्द्र जैसे बहुज्ञ पुजारी ने इसका अवलोकन किया और उसके कुछ अंशों के अर्थ किये। अन्य पंडितों का अभिमत लेने पर वे अर्थ अपर्याप्त पाये गये और विवशत: छोड़ने पड़े।

राग विभास

ज्यौंही ज्यौंही तुम राखत हौ त्यौंही त्यौंही रहियत है हों हरि।
और तौ अचरचे पाय धरौं सु तौ कहौं कौन के पेंड भरि।
जद्यपि हौं अपनौ भायौ कियौ चाहौं कैसे करि सकौं जो तु राखौ पकरि।

हरिदास के स्वामी श्याम कुंज बिहारी

पिजरा के जनावर लौं तरफराय रहौ उड़िवे कौ कितौक करि।।
काहूकौ बस नांहि तुम्हारी कृपा ते सब होय श्री बिहारी बिहारिन।
और मिथ्या प्रपंच काहे कौं भाषिये सो तौ है हारिनि।
जाहि तुम सौं हित तासौं तुम हित करौ सब सुख कारनि।
हरिदास के स्वामी श्यामा कुंजबिहारी प्राँननि के आधारनि।।
कबहूँ कबहूँ मन इत उत जातैं यातें अब कौन है अधिक सुख।
बहुत भाँति नयत आंनि राख्यौ नाहितौ पावतौ दुख।
कोटि कमलावन्य बिहारी तातै मुहा चुहीं सब सुख लियें रहत रुख।
हरिदास के स्वामी श्यामा कुंज बिहारी दिन देषत रहौ विचित्र मुख।।
हरि भजि हरि भजि छांड़िन मान नर तन कौ।
जिन बंछैरे जिन बंछैरे तिल तिल धनकौं।
अनमागैं आगैं आवैगौ ज्यौं पल लागैं पलकौं।
कहि हरिदास मीच ज्यौं आवै त्यौं धन आपुन कौ।।

राग बिलावल

हे हरि मोसौं न बिगारन कौं तोसौं न सम्हारन कौं मोहि तांहि परी होड़,
कौंन धौं जी तै कौंन धौं हारै परि बादी न छोड़।

तुम्हारी मायाबाजी पसारी विचित्र मोहे मुनि काके भूले कोउ।
कहि हरिदास हम जीते हारे तुम तहु न तोड़।।
वंदे अखत्यार भला।
चित न डुलाव आव समाधि भीतर न होहु अगला।
न फिर दर दर पदर पद न होहु अधला।
कहि हरिदास करता किया सो हुवा सुमेर अचल चला।।
हित तौ कीजै कमल नैन सों जा हित के आगैं और हित के लागै फीकौ।
कै हित कीजैं साधु संगत सौं ज्यौं कलमषि जाय जीकौ।
हरि कौ हित ऐसौ जैसौ रंग मजीठ।
संसार हिंत असौ जैसौ रंग कसूम दिन दुती कौ।
कहि हरिदास हित कीजै बिहारी सौं और निवाहू जी कौ।।
तिनका बयार बस।
ज्यौं भावै त्यौं उड़ाय ले जाय आपने रस।
ब्रह्म लोक शिवलोक और लोक अस।
कहे हरिदास विचार देखौ विना बिहारी नाहिं जस।।
संसार समुद्र मनुष्य मीन नक्र मगर और जीब बहु बंदसि।
मन बयार प्रेरे स्नेह फंद फदसि।
लोभ पिंजरा लोभी मरजिया पदारथ चारि खंदखंदसि।
कहि हरिदास तेई जीव पराभये जे गहि रहे चरन आनन्द नन्दसि।
हरि के नाम कौ आलस कित करत है रे काल फिरत सर सांधे।
बेर कुबेर कछू नहि जानत कढ्यौ फिरत है कांधे।
हीरा बहुत जवाहिर सच्चे राँचे कहा भयौ हस्ती दर बाँधे।
कहि हरिदास महल में बनिता बनठाढ़ी भई।
तव कछु न चलत जब आवत अन्त की आँधे।।
देखौ इनि लोगन की लावनि।
बूझत नाँहिं हरिचरनकमल कौं मिथ्या जन्म गवावनि।।
जब जमदूत आय घेरत हैं करत आप मनभावनि।
कहै हरिदास तबहीं चिरजीवै कुंजबिहारी चितवनि।।
मन लगाय प्रीति कीजै करवासों ब्रज बीचिन न दीजे सोहनी।
वृन्दावन सो बन उपबन सौं गुंजमाल हाथ पोहनी।

गो गोसुतन सों मृगी मृगसुतन सौं और तन नेंक न जोहनी।
हरिदास के स्वामी श्यामां कुंज बिहारी सोचित ज्यों सिर पर दोहनी।।

राग कल्यान

हरि कौ असोई सब खेल,
मृग तृष्णा जग ब्यापि रह्यों है कहूँ बिजौरौ न बेलि।
धन मद जोवन मद राज मद ज्यौं पंछिन में डेल,
कहै हरिदास यहै, जिय जानौ तीरथ को सौ मेल।।
माई धनि वे मृगी जे कमल नैन कों पूजित अपनें अपनैं भरतारन सहित,
धनिवे गाइ वछ वेई जे वशरस पीवत श्रवन दोना ज्यौं जाई न बहत।
पंछी न होंहिं मुनि जन जेते केते सेवहि दिन काम क्रोध लोभ रहित,
सुनि हरिदास हमारे पति ते कठिन जान दे हये राखत गहत।।

राग बरारी

लाल मेरे दूध की दोहनी,
मारग जात माहि रह्यौ री अंचरा मेरौ जाहिन दंत हो बिना बोहना।
नागरि गूजरि ठगि लीनों मेरौं लाल गोरोचन कौ तिलक भावै मोहना,
हरिदास के स्वामी इहां असोई न्याव है या नगरी जिन बसोरी सोहनी।।

राग कान्हरो

झूठी बात सांची करि दिखावत हौ हरि नागर,
निसि दिन बुनत उधेरत हौ जाय प्रपंच कौ सागर।
ठाठ बनाय धरयौ मिहरी कौ है पुरुखतें आगर,
सुनि हरिदास यहै, जिय जानों सुपनें कौ सौ जागर।।
जगत प्रीति करि देवी नाहि नेंग टीकौ कोऊ,
छत्रपति रंक लौ देखै प्रकृति विरोध न बन्यौ कोऊ।
दिन जु गये बहुत जन्मन के ऐसौ जावौं जिन कोऊ।।
सुनि हरिदास मीत भलौ पायौ विहारी ऐसौ पावौ सब कोऊ।।
लोग तौ भूल्यौ भलै भूल्यों तुम मति भूलौ मालाधारी।
आपनौ पति छाँड़ि आरनि सौं राति ज्यौं दारिन में दारी।
स्याम कहत जे जीव मोते विमुख जोको जिन दूसरी कर डारी,

कहि हरिदास जज्ञ देवता पितरन कौ शरधा भारी।।
जौलौ जीवै तौलौ हरि मज रे मन और बात सब बादि,
द्यौस चार के हलभला में तू कहा लेगौ लादि।
धनमद जोवनमद राजमद भूल्यौ नगर विवादि,
कहि हरिदास लोभ चरपट भयौ काहेकी लगै फिरादि।।
प्रेम समुद्र रूप रस गहिरे कैसे लागै घाट,
बेकार्यौ दै जानि कहावत जानि पन्यौ को कहा परी वाट।
काहू कौ सर सूधौ न परै मारत गाल गली गली हाट,
कहि हरिदास जानि ठाकुर बिहारी तकत न ओट पाट।।

सम्बंधित प्रसंग

एक बार हरिदास भगवती यमुना की रेती में बैठे हुए थे। वसन्त-ऋतु का यौवन अपनी पराकाष्ठा पर था। चारों ओर कोयल की सुरीली और मीठी कण्ठध्वनि कुंज-कुंज में अनुपम उद्दीपन का संचार कर रही थी। लताएं कुसुमित होकर पादपों के गाढ़ालिंगन में शयन कर रही थीं। वृन्दावन के मन्दिरों में धमार की धूम थी। रसिक हरिदास का मन डोल उठा। उनके प्राणप्रिय रास-बिहारी की मनोरम दिव्यता उनके नयनों में समा गयी। वृन्दावन की चिन्मयता की आरसी में अपने उपास्य की झांकी करके वे ध्यानस्थ हो गये। उन्हें तनिक भी बाह्य ज्ञान नहीं था। वे मानस-जगत की सीमा में भगवदीय कान्ति का दर्शन करने लगे। भगवान राधारमण रंगोत्सव में प्रमत्त होकर राधारानी के अंग-अंग को कर में कनक पिचकारी लेकर सराबोर कर रहे थे। ललिता, विशाखा आदि रासेश्वरी की ओर से नन्दनन्दन पर गुलाल और अबीर फेंक रही थीं। यमुना-जल रंग से लाल हो चला था। बालुका में गुलाल और बुक्के के कण चमक रहे थे। भगवान होली खेल रहे थे। हरिदास के प्राणों में रंगीन चेतनाएं लहराने लगीं। नन्दनन्दन के हाथ की पिचकारी छूट ही तो गयी। हरिदास के तन-मन भगवान के रंग में शीतल हो गये। उनका अन्तर्देश गहगहे रंग में सराबोर था। भगवान ने भक्त को ललकारा। हरिदास ने भगवान के पीताम्बर पर इत्र की शीशी उड़ेल दी। इत्र की शीशी जिसने भेंट की थी, वह तो उनके इस चरित्र से आश्चर्यचकित हो गया। जिस वस्तु को उसने इतने प्रेम से प्रदान किया था, उसे उन्होंने रेती में छिड़ककर अपार आनन्द का अनुभव किया। रसिक हरिदास की आंखें खुलीं। उन्होंने उस व्यक्ति की मानसिक वेदना की बात जान ली और शिष्यों के साथ श्रीबिहारी जी के

दर्शन के लिये भेजा। उस व्यक्ति ने बिहारी जी का वस्त्र इत्र से सराबोर देखा और देखा कि पूरा मन्दिर विलक्षण सुगन्ध से परिपूर्ण था। वह बहुत लज्जित हुआ, पर भगवान ने उसकी परम प्यारी भेंट स्वीकार कर ली, यह सोचकर उसने अपने सौभाग्य की सराहना की।

एक बार एक धनी तथा कुलीन व्यक्ति ने हरिदास से दीक्षित होने की इच्छा प्रकट की और उन्हें पारस भेट स्वरूप दिया। हरिदास ने पारस को पत्थर कहकर यमुना में फेंक दिया और उसे शिष्य बना लिया।

अपने दरबारी गायक भक्तवर तानसेन से एक बार अकबर ने पूछा–'क्या तुमसे बढ़कर भी कोई गाने वाले व्यक्ति हैं।' तानसेन ने विनम्रतापूर्वक स्वामी हरिदास जी का नाम लिया। अकबर ने उन्हें राजसभा में आमन्त्रित करना चाहा, पर तानसेन ने निवेदन किया कि वे कहीं आते-जाते नहीं। निधिवन जाने का निश्चय हुआ। हरिदास जी तानसेन के संगीत-गुरु थे। उनके सामने जाने में तानसेन के लिये कुछ भी अड़चन नहीं थी। रही अकबर की बात, सो उन्होंने वेष बदलकर एक साधारण नागरिक के रूप में उनका दर्शन किया। तानसेन ने जान-बूझकर एक गीत गलत राग में गाया। स्वामी हरिदास ने उसे परिमार्जित और शुद्ध करके कोकिल कण्ठ से जब अलाप भरना आरम्भ किया, तब अकबर ने संगीत की दिव्यता का अनुभव किया। तानसेन ने कहा–'स्वामी जी सम्राटों के सम्राट भगवान श्रीकृष्ण के गायक हैं।'

एक बार श्रीकृष्ण चैतन्य गौरांग महाप्रभु से वे बात कर रहे थे। ठीक उसी समय राधाकुण्ड निवासी रघुनाथदास मानसिकशृंगार में खोयी हुई प्रियाजी की पुष्प-वेणी खोजते उनके निकट आ पहुंचे। स्वामी जी ने अश्वत्थ वृक्ष के नीचे पता लगाकर उनकी मानसिक सेवा की, समस्त व्यवस्था का निरूपण कर दिया। स्वामी हरिदास ने रस की प्रीति-रीति चलायी, जिस पथ पर यती, योगी, तपी और संन्यासी ध्यान लगाकर भगवान के दर्शन से अपनी साधना सफल करते हैं और फिर भी उनके रूप-रस की कल्पना नहीं कर पाते, उसी को स्वामी हरिदास ने अपनाकर भगवान 'रसो वै सः' को मूर्तिमान पा लिया।

9

सूरदास मदनमोहन

सूरदास मदनमोहन की गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रमुख भक्त कवियों में गणना की जाती है।

परिचय

सूरदास मदनमोहन अकबर शासन काल में संडीला,जिला हरदोई उत्तर प्रदेश में अमीन थे। इसी आधार पर इनका समय सोलहवीं शताब्दी अनुमानित किया जा सकता है। ये जाति के ब्राह्मण थे। इन्होंने किसी गौड़ीय विद्वान से दीक्षा ली। सूरदास मदनमोहन का वास्तविक नाम सूरध्वज था, किन्तु कविता में इन्होंने अपने इस नाम का कभी प्रयोग नहीं किया। मदनमोहन के भक्त होने के कारण इन्होंने सूरदास नाम के साथ मदनमोहन को भी अपने पदों में स्थान दिया।

नवलकिशोर नवल नगरिया।
अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर स्याम भुजा अपने उर धरिया।।
करत विनोद तरनि तनया तट,स्यामा स्याम उमगि रसभरिया।
यों लपटाई रहे उर अंतर मरकतमणि कंचन ज्यों जरिया।।
उपमा को घन दामिनी नाहीं कंदरप कोटि वारने करिया।
श्री सूरदास मदनमोहन बलि जोरी नन्दनन्दन वृषभानु दुलरिया।।

भक्तमाल में नाभादास जी ने सूरदास मदनमोहन के सम्बन्ध में जो छप्पय लिखा है, उससे ज्ञात होता है कि ये गान-विद्या और काव्य रचना में बहुत निपुण थे। इनके

उपास्य राधा-कृष्ण थे। युगल किशोर की रहस्यमयी लीलाओं में पूर्ण प्रवेश के कारण इन्हें सुहृद सहचरि का अवतार माना गया है। भक्तमाल के छप्पय की टीका करते हुए प्रियादास जी ने सूरदास के जीवन की उस घटना का भी उल्लेख किया है, जिसके कारण ये संडीला की अमीनी छोड़कर वृन्दावन चले गए थे।

रचनाएँ

सूरदास मदनमोहन के लिखे हुए स्फुट पद ही आज उपलब्ध होते हैं,जिनका संकलन सुहृद वाणी के रूप में किया गया है।

माधुर्य भक्ति का वर्णन

इनके उपास्य नवल किशोर राधा-कृष्ण हैं। यह अनुपम जोड़ी कुंजों में रास-लीला के द्वारा सखी और सखाओं को आनन्दित करती है। राधा और कृष्ण दोनों अनुपम सुन्दर हैं। जहाँ कृष्ण श्याम वर्ण हैं,वहाँ राधा गौर वर्ण हैं,किन्तु काँटी में दोनों समान हैं। सिद्धान्तों कृष्ण ही राधा और राधा ही कृष्ण हैं। ये उसी प्रकार एक हैं, जिस प्रकार धूप और छाँह, घन और दामिनी तथा दृष्टि और नयन। फिर भी लीला के लिए उन्होंने दो विग्रह धारण किये हुए हैं–

माई री राधा वल्लभ वल्लभ राधा।
वे उनमें उनमें वे वसत॥
गम छाँह घन दामिनी कसौटीलीक ज्यों कसत।
दृष्टि नैन स्वास वैन नैन सैन दोऊ लसत।

सूरदास मदनमोहन सनमुख ठाढ़े ही हसत। सूरदास मदन मोहन के कृष्ण मायाधिपति हैं। उनकी माया समस्त जगत को अपने वश में करने वाली है,किन्तु मायाधिपति होने पर भी कृष्ण स्वयं प्रेम के वशीभूत हैं। इसी कारण जिस प्रकार इनकी माया समस्त जगत को नचाती है, उसी प्रकार गोपयुवतियाँ इन्हें अपने प्रेम के बल पर नचाती हैं। राधा सर्वांग सुंदरी हैं उनके रूप लावण्य की समता कमला, शची और स्वयं कामदेव की पत्नी रति भी नहीं कर सकतीं। रूप ही नहीं गुण और प्रेम की दृष्टि से भी राधा अनुपम हैं। इसीलिए श्रीकृष्ण उनके प्रेम का आस्वादन करने के लिए ब्रज में प्रकट हुए हैं। सामाजिक सम्बन्ध की दृष्टि से सूरदास मदनमोहन ने राधा को कृष्ण का स्वकीया माना है। राधा-विवाह की शंका निवारण करने के लिए इन्होंने भी सूरसागर के रचयिता के समान राधा-कृष्ण का विवाह रचाया है, जिसमें गोपियाँ आहूत अभ्यागत हैं तथा इनके

विवाह में मंगलाचार गाती हैं। दोनों को वर-वधू के वेश में देख कर कवि की मानसिक साध पूरी हो जाती है। यथा:

गोपी सबै न्यौते आई,मुरली बरन्योति बुलाई।
सखियनि मिलि मंगल गाये,बहु फुलनि मंडप छाये।।
छाये जो फूलनि कुंज मंडप पुलिन में वेदी रची।
बैठे जु स्यामा स्यामवर त्रयीलोक की शोभा सची।।
सूरदासहिं भयो आनन्द पूजी मन की साधा।
मदनमोहन लाल दूलहु दुलहिनि श्री राधा।।

स्वकीया के अतिरिक्त कुछ परकीयाभाव परक पद भी इनकी वाणी में मिल जाते हैं। किन्तु इन पदों का सम्बन्ध विशेष रूप से राधा के साथ न होकर सामान्य गोपयुवतियों के साथ है। इस प्रकार लोक लाज,कुलकानि छोड़कर कृष्ण के पास जाने का अवसर यमुना-तीर पर बजती हुई मुरली की ध्वनि को सुनकर उत्पन्न होता है। उस चर अचर सभी को स्तम्भित कर देने वाली ध्वनि को सुनकर यदि माता-पिता और पुत्र-पति आदि का विस्मरण हो जाता है तो आश्चर्य की कोई बात नहीं।

चलो री मुरली सुनिए कान्ह बजाई जमुना तीर।
तजि लोक लाज कुल की कानि गुरुजन की भीर।।
जमुना जल थकित भयो वच्छा न पीयें छीर।
सुर विमान थकित भये थकित कोकिल कीर।।
देह की सुधि बिसरि गई बिसरयो तन को चीर।
मात तात बिसर गये बिसरे बालक वीर।।
मुरली धुनि मधुर बाजै कैसे के घरों धीर।
श्री सूरदास मदनमोहन जानत हौं यह पीर।।

राधा-कृष्ण की संयोग पक्ष की लीलायें परस्पर हास -परिहास अथवा छेद-छाड़ से आरम्भ होती है। इसी परिहास का परिणाम रूप ठगौरी में दिखाई देता है। तदनन्तर गुप्त मिलन के लिए, जिस तिस प्रकार से अवसर ढूंढ लिया जाता है। स्वयं श्रीकृष्ण भी गुप्त कुंज-स्थलों पर अपनी प्रेयसी की प्रतीक्षा करते देखे जाते हैं।

वृन्दावन बैठे मग जोवत बनवारी।
सीतल मंद सुगंध पवन बहै बंसीवट जमुना तट निपट निकट चारी।।
कुंजन की ललित कुसुमन की सेज्या रुचि बैठे नटनागर नवललन बिहारी।
श्री सूरदास मदनमोहन तेरो मग जोवत चलहु वेगि तूही प्राण प्यारी।।

10

हरिराम व्यास

हरिराम व्यास (संवत् 1567-1689) राधावल्लभ सम्प्रदाय के उच्च कोटि के भक्त तथा कवि थे। राघावल्लभीय संप्रदाय के हरित्रय में इनका विशिष्ट स्थान है।

परिचय

भक्तप्रवर व्यास जी का जन्म ओड़छानिवासी श्री सुमोखन शुक्ल के घर मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी, संवत् 1567 को हुआ था। वे सनाढ्य शुक्ल ब्राह्मण थे। संस्कृत के अध्ययन में विशेष रुचि होने के कारण अल्पकाल ही में इन्होंने पांडित्य प्राप्त कर लिया। ओड़छानरेश मधुकरशाह इनके मित्रशिष्य थे। व्यास जी अपने पिता की ही भाँति परम् वैष्णव तथा सद्गृहस्थ थे। राधाकृष्ण की ओर विशेष झुकाव हो जाने से ये ओड़छा छोड़कर वृंदावन चले आए। राधावल्लभ संप्रदाय के प्रमुख आचार्य गोस्वामी हितहरिवंश जी के जीवनदर्शन का इनके ऊपर ऐसा मोहक प्रभाव पड़ा कि इनकी अंतर्वृत्ति नित्यकिशोरी राधा तथा नित्यकिशोर कृष्ण के निकुंजलीलागान में रम गई। चैतन्य संप्रदाय के रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी से इनकी गाढ़ी मैत्री थी। इनकी निधनतिथि ज्येष्ठ शुक्ला 11, सोमवार सं. 1689 मानी जाती है।

इनका धार्मिक दृष्टिकोण व्यापक तथा उदार था। इनकी प्रवृत्ति दाशर्निक मतभेदों को प्रश्रय देने की नहीं थीं।

राधावल्लभीय संप्रदाय के मूल तत्त्व

'नित्यविहार दर्शन'–जिसे 'रसोपासना' भी कहते हैं–की सहज अभिव्यक्ति इनकी वाणी में हुई है। इन्होंने शृंगार के अंतर्गत संयोगपक्ष को नित्यलीला का प्राण माना है। राधा का नखशिख और शृंगारपरक इनकी अन्य रचनाएँ भी संयमित एवं मर्यादित हैं। 'व्यासवाणी' भक्ति और साहित्यिक गरिमा के कारण इनकी प्रौढ़तम कृति है।

पहले ये संस्कृत के शास्त्रार्थी पंडित थे और सदा शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार रहते थे। एक बार वृंदावन में जाकर गोस्वामी हितहरिवंश जी को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। गोसाईं जी ने नम्र भाव से यह पद कहा –

यह जो एक मन बहुत ठौर करि कहि कौनै सचु पायो।
जहँ तहँ बिपति जार जुवती ज्यों प्रगट पिंगला गायो

दीक्षा–गुरु

निम्न दोहे से प्रतीत होता है कि इनके दीक्षा–गुरु हितहरिवंश थे–

उपदेस्यो रसिकन प्रथम,तब पाये हरिवंश।
जब हरिवंश कृपा करी,मिठे व्यास के संश॥

यह पद सुनकर व्यास जी चेत गए और हितहरिवंश जी के अनन्य भक्त हो गए। उनकी मृत्यु पर इन्होंने इस प्रकार अपना शोक प्रकट किया –

हुतो रस रसिकन को आधार।
बिन हरिबंसहि सरस रीति को कापै चलिहै भार?
को राधा दुलरावै गावै, बचन सुनावै कौन उचार?
वृंदावन की सहज माधुरी, कहिहै कौन उदार?
पद रचना अब कापै ह्वैहै? निरस भयो संसार।
बड़ो अभाग अनन्य सभा को, उठिगो ठाट सिंगार
जिन बिन दिन छिन जुग सम बीतत सहज रूप आगार।
व्यास एक कुल कुमुद चंद बिनु उडुगन जूठी थार।

जब हितहरिवंश जी से दीक्षा लेकर व्यास जी वृंदावन में ही रह गए तब महाराज 'मधुकर साह' इन्हें ओरछा ले जाने के लिए आए, पर ये वृंदावन छोड़कर न गए और अधीर होकर इन्होंने यह पद कहा–

वृंदावन के रूख हमारे माता पिता सुत बंधा।
गुरु गोविंद साधुगति मति सुख, फल फूलन की गंधा

इनहिं पीठि दै अनत डीठि करै सो अंधान में अंधा।
व्यास इनहिं छोड़ै और छुड़ावै ताको परियो कंधा

रचनाएँ

व्यास-वाणी (हिन्दी में)-प्रकाशित,
रागमाला (हिन्दी में),
नवरत्न (संस्कृत में),
स्वधर्म पद्धति (संस्कृत में)।

माधुर्य भक्ति का वर्णन

व्यास जी के उपास्य श्यामा-श्याम रूप, गुण तथा स्वभाव सभी दृष्टियों से उत्तम हैं। ये वृन्दावन में विविध प्रकार रास आदि की लीलाएं करते हैं। इन्हीं लीलाओं का दर्शन करके रसिक भक्त आत्म-विस्मृति की आनन्दपूर्ण दशा को सहज ही प्राप्त कर लेते हैं। यद्यपि राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण को परस्पर किसी प्रकार के स्वकीया या परकीया भाव के बन्धन में नहीं बाँधा गया, किन्तु लीलाओं का वर्णन करते समय कवि ने सूरदास की भाँति यमुना-पुलिन पर अपने उपास्य-युगल का विवाह करवा दिया है।

मोहन मोहिनी को दूलहु।
मोहन की दुलहिनी मोहनी सखी निरखि निरखि किन फूलहु।
सहज ब्याह उछाह,सहज मण्डप,सहज यमुना के कूलहू।
सहज खवासिनि गावति नाचति सहज सगे समतूलहु॥

यही कृष्ण और राधा व्यास जी सर्वस्व हैं। इनके आश्रय में ही जीव को सुख की प्राप्ति हो सकती है,अन्यत्र तो केवल दुख ही दुख है। इसी कारण अपने उपास्य के चरणों में दृढ़ विश्वास रखकर सुख से जीवन व्यतीत करते हैं–

काहू के बल भजन कौ,काहू के आचार।
व्यास भरोसे कुँवरि के,सोवत पाँव पसार॥

राधा के रूप सौन्दर्य का वर्णन दृष्टव्य है:-

नैन खग उड़िबे को अकुलात।
उरजन डर बिछुरे दुख मानत, पल पिंजरा न समात॥
घूंघट विपट छाँह बिनु विहरत, रविकर कुलहिं डरात।
रूप अनूप चुनौ चुनि निकट अधर सर देखि सिरात॥

धीर न धरत,पीर कहि सकत न, काम बधिक की घात।
व्यास स्वामिनी सुनि करुना हँसि, पिय के उर लपटात॥

साधना की दृष्टि व्यास जी भक्ति का विशेष महत्व स्वीकार किया है। उनके विचार से व्यक्ति का जीवन केवल भक्ति से सफल हो सकता है:-

जो त्रिय होइ न हरि की दासी।
कीजै कहा रूप गुण सुन्दर,नाहिंन श्याम उपासी॥
तौ दासी गणिका सम जानो दुष्ट राँड मसवासी।
निसिदिन अपनों अंजन मंजन करत विषय की रासी॥
परमारथ स्वप्ने नहिं जानत अन्ध बंधी जम फाँसी।

11

ध्रुवदास

राधावल्लभ सम्प्रदाय में ध्रुवदास का भक्त कवियों में प्रमुख स्थान है। इस सम्प्रदाय के भक्ति-सिद्धान्तों का जैसा सर्वांगपूर्ण विवेचन इनकी वाणी में उपलब्ध होता है वैसा किसी अन्य भक्त की वाणी में नहीं। सम्प्रदाय में विशेष महत्वपूर्ण स्थान होते हुए भी आप के जन्म-संवत् आदि का कुछ भी निश्चित पता नहीं है। आपने अपने रसानन्द लीला नामक ग्रन्थ में उसका रचना-काल इस प्रकार दिया है–

'संवत् सोलह सै पंचासा,बरनत हित ध्रुव जुगल बिलासा।'

इस ग्रन्थ को यदि आप की प्रारम्भिक रचना माना जाय तो उससे कम से कम बीस वर्ष पूर्व की जन्म तिथि माननी होगी। इस आधार पर आप का जन्म संवत् 1630 के आसपास सुनिश्चित होता है। इसी प्रकार ध्रुवदास जी के रहस्यमंजरी लीला नामक ग्रन्थ में उपलब्ध निम्न दोहे के आधार पर इनकी मृत्यु संवत् 1700 के आसपास का अनुमान लगाया जा सकता है–

सत्रह सै द्वै ऊन अरु अगहन पछि उजियार।
दोहा चौपाई कहें ध्रुव इकसत ऊपर चार॥

ध्रुवदास जी का जन्म देवबन्द ग्राम के कायस्थ कुल में हुआ था।आप के वंश में पहले से ही वैष्णव-पद्धति की अनन्य उपासना चलती थी। ध्रुवदास जी के वंशजों के अनुसार इनके पितामह श्री हितहरिवंश जी के शिष्य थे। इनके पिता

श्यामदास भी परमभक्त और समाज सेवी पुरुष थे। ध्रुवदास की रचनाओं से पता चलता है कि पिता समान इन्होंने भी श्री गोपीनाथ जी से ही युगल-मन्त्र की दीक्षा ली

श्री गोपीनाथ पद उर धरैं महागोप्य रस धार।
बिनु विलम आवे हिये अद्‌भुत जुगल विहार॥

ध्रुवदास जी जन्मजात संस्कारों के कारण शैशव में ही विरक्त हो गए और अल्पायु में ही वृन्दावन चले आये। ये स्वभाव से अत्यंत विनम्र, विनीत, साधुसेवी, सहनशील और गंभीर प्रकृति के महात्मा थे।

रचनाएँ

आप की सभी रचनाएँ मुक्तक हैं। उन्होंने अपने ग्रंथों का नाम लीला रखा। इनके ग्रंथों या लीलाओं की संख्या बयालीस है। इसके अतिरिक्त आप के 103 फुटकर पद और मिलते हैं, जिन्हें पदयावली के नाम से बयालीस लीला में स्थान दिया गया है।

भक्ति माधुर्य का वर्णन

वृन्दावन घन-कुंज में प्रेम -विलास करने वाले अपने उपास्य-युगल श्यामा-श्याम का परिचय ध्रुवदास जी ने निम्न कवित्त में दिया है–

प्रीतम किशोरी गोरी रसिक रंगीली जोरी,
प्रेम के रंग ही बोरी शोभा कहि जाति है।
एक प्राण एक बेस एक ही सुभाव चाव,
एक बात दुहुनि के मन को सुहाति है।
एक कुंज एक सेज एक पट ओढ़े बैठे,
एक एक बीरी दोउ खंडि खंडि खात हैं।
एक रस एक प्राण एक दृष्टि हित ध्रुव
हेरि हेरि बढ़े चौंप क्यों हू न अघात हैं॥

राधा-कृष्ण के पारस्परिक प्रेम का वर्णन निम्न कवित्त में दृष्टव्य है:

जैसी अलबेली बाल तैसे अलबेले लाल,
दुहुँनि में उलझी सहज शोभा नेह की।
चाहनि के अम्बु दे-दे सींचत हैं छिन-छिन,
आलबाल भई -सेज छाया कुंज गेह की॥

अनुदिन हरी होति पानिष वदन जोति,
ज्यों ज्यों ही बौछार ध्रुव लागे रूप मेह की।
नैननि की वारि किये हरैं सखी मन दियें,
चित्र सी ह्वै रही सब भूली सुधि देह की॥

ध्रुवदास जी ने अपनी आराध्या राधा के स्वाभाव तथा सौन्दर्य का वर्णन कई कवित्त और सवैयों में किया है। निम्न कवित्त उनकी काव्य-प्रतिभा एवं कल्पना शक्ति का पूर्ण परिचायक है।

हँसनि में फूलन की चाहन में अमृत की,
नख सिख रूप ही की बरषा सी होति है।
केशनि की चन्द्रिका सुहाग अनुराग घटा,
दामिनी की लसनि दशनि ही की दोति है॥
हित ध्रुव पानिप तरंग रस छलकत,
ताको मानो सहज सिंगार सीवाँ पोति है।
अति अलबेलि प्रिये भूषित भूषन बिनु,
छिन छिन औरे और बदन की जोति है॥

12

रैदास

संत रैदास काशी के रहने वाले थे। इन्हें रामानन्द का शिष्य माना जाता है परंतु अंत:साक्ष्य के किसी भी स्रोत से रैदास का रामानन्द का शिष्य होना सिद्ध नहीं होता। इनके अतिरिक्त रैदास की कबीर से भी भेंट की अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं परंतु उनकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है। नाभादास कृत 'भक्तमाल' में रैदास के स्वभाव और उनकी चारित्रिक उच्चता का प्रतिपादन मिलता है। प्रियादास कृत 'भक्तमाल' की टीका के अनुसार चित्तौड़ की 'झालारानी' उनकी शिष्या थीं, जो महाराणा सांगा की पत्नी थीं। इस दृष्टि से रैदास का समय सन् 1482-1527 ई. (सं. 1539-1584 वि.) अर्थात् विक्रम की सोलहवीं शती के अंत तक चला जाता है। कुछ लोगों का अनुमान कि यह चित्तौड़ की रानी मीराबाई ही थीं और उन्होंने रैदास का शिष्यत्व ग्रहण किया था। मीरा ने अपने अनेक पदों में रैदास का गुरु रूप में स्मरण किया है -

'गुरु रैदास मिले मोहि पूरे, धुरसे कलम भिड़ी।
सत गुरु सैन दई जब आके जोत रली।'

रैदास ने अपने पूर्ववर्ती और समसामायिक भक्तों के सम्बन्ध में लिखा है। उनके निर्देश से ज्ञात होता है कि कबीर की मृत्यु उनके सामने ही हो गयी थी। रैदास की अवस्था 120 वर्ष की मानी जाती है।

जन्म

मध्ययुगीन संतों में प्रसिद्ध रैदास के जन्म के संबंध में प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। कुछ विद्वान् काशी में जन्मे रैदास का समय 1482–1527 ई. के बीच मानते हैं। रैदास का जन्म काशी में चर्मकार कुल में हुआ था। उनके पिता का नाम 'रग्घु' और माता का नाम 'घुरविनिया' बताया जाता है। रैदास ने साधु-सन्तों की संगति से पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया था। जूते बनाने का काम उनका पैतृक व्यवसाय था और उन्होंने इसे सहर्ष अपनाया। वह अपना काम पूरी लगन तथा परिश्रम से करते थे और समय से काम को पूरा करने पर बहुत ध्यान देते थे। उनकी समयानुपालन की प्रवृत्ति तथा मधुर व्यवहार के कारण उनके सम्पर्क में आने वाले लोग भी बहुत प्रसन्न रहते थे।

व्यक्तित्त्व

रैदास के समय में स्वामी रामानन्द काशी के बहुत प्रसिद्ध प्रतिष्ठित सन्त थे। रैदास उनकी शिष्य-मण्डली के महत्त्वपूर्ण सदस्य थे। प्रारम्भ में ही रैदास बहुत परोपकारी तथा दयालु थे और दूसरों की सहायता करना उनका स्वभाव बन गया था। साधु-सन्तों की सहायता करने में उनको विशेष सुख का अनुभव होता था। वह उन्हें प्रायः मूल्य लिये बिना जूते भेंट कर दिया करते थे। उनके स्वभाव के कारण उनके माता-पिता उनसे अप्रसन्न रहते थे। कुछ समय बाद उन्होंने रैदास तथा उनकी पत्नी को अपने घर से अलग कर दिया। रैदास पड़ोस में ही अपने लिए एक अलग झोपड़ी बनाकर तत्परता से अपने व्यवसाय का काम करते थे और शेष समय ईश्वर-भजन तथा साधु-सन्तों के सत्संग में व्यतीत करते थे। कहते हैं, ये अनपढ़ थे, किंतु संत-साहित्य के ग्रंथों और गुरु-ग्रंथ साहब में इनके पद पाए जाते हैं।

वचनबद्धता

उनके जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं से समय तथा वचन के पालन सम्बन्धी उनके गुणों का ज्ञान मिलता है। एक बार एक पर्व के अवसर पर पड़ोस के लोग गंगा-स्नान के लिए जा रहे थे। रैदास के शिष्यों में से एक ने उनसे भी चलने का आग्रह किया तो वे बोले, 'गंगा-स्नान के लिए मैं अवश्य चलता किन्तु एक व्यक्ति को आज ही जूते बनाकर देने का मैंने वचन दे रखा है। यदि आज मैं जूते नहीं दे सका तो वचन भंग होगा। गंगा स्नान के लिए जाने पर मन यहाँ

लगा रहेगा तो पुण्य कैसे प्राप्त होगा? मन जो काम करने के लिए अन्त:करण से तैयार हो वही काम करना उचित है। मन सही है तो इस कठौती के जल में ही गंगास्नान का पुण्य प्राप्त हो सकता है।' कहा जाता है कि इस प्रकार के व्यवहार के बाद से ही कहावत प्रचलित हो गयी कि-'मन चंगा तो कठौती में गंगा।'

शिक्षा

रैदास ने ऊँच-नीच की भावना तथा ईश्वर-भक्ति के नाम पर किये जाने वाले विवाद को सारहीन तथा निरर्थक बताया और सबको परस्पर मिल जुल कर प्रेमपूर्वक रहने का उपदेश दिया। वे स्वयं मधुर तथा भक्तिपूर्ण भजनों की रचना करते थे और उन्हें भाव-विभोर होकर सुनाते थे। उनका विश्वास था कि राम, कृष्ण, करीम, राघव आदि सब एक ही परमेश्वर के विविध नाम हैं। वेद, कुरान, पुराण आदि ग्रन्थों में एक ही परमेश्वर का गुणगान किया गया है।

'कृस्न, करीम, राम, हरि, राघव, जब लग एक न पेखा।
वेद कतेब कुरान, पुरानन, सहज एक नहिं देखा।।'

उनका विश्वास था कि ईश्वर की भक्ति के लिए सदाचार, परहित-भावना तथा सदव्यवहार का पालन करना अत्यावश्यक है। अभिमान त्याग कर दूसरों के साथ व्यवहार करने और विनम्रता तथा शिष्टता के गुणों का विकास करने पर उन्होंने बहुत बल दिया। अपने एक भजन में उन्होंने कहा है -

'कह रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सो पावै।
तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलक हवै चुनि खावै।'

उनके विचारों का आशय यही है कि ईश्वर की भक्ति बड़े भाग्य से प्राप्त होती है। अभिमान शून्य रहकर काम करने वाला व्यक्ति जीवन में सफल रहता है, जैसे कि विशालकाय हाथी शक्कर के कणों को चुनने में असमर्थ रहता है, जबकि लघु शरीर की 'पिपीलिका' इन कणों को सरलतापूर्वक चुन लेती है। इसी प्रकार अभिमान तथा बड़प्पन का भाव त्याग कर विनम्रतापूर्वक आचरण करने वाला मनुष्य ही ईश्वर का भक्त हो सकता है।

सत्संग

शैशवावस्था से ही सत्संग के प्रति उनमें तीव्र अभिरुचि थी। अत: रामजानकी की मूर्ति बनाकर पूजन करने लगे थे। पिता ने किसी कारणवश उन्हें

अपने से अलग कर दिया था और वे घर के पिछवाड़े छप्पर डालकर रहने लगे। ये परम संतोषी और उदार व्यक्ति थे। वे अपने बनाये हुये जूते बहुधा साधु-सन्तो में बांट दिया करते थे। इनकी विरक्ति के सम्बन्ध में एक प्रसंग मिलता है कि एक बार किसी महात्मा ने उन्हें 'पारस' पत्थर दिया जिसका उपयोग भी उसने बता दिया। पहले तो सन्त रैदास ने उसे लेना ही अस्वीकार कर दिया। किन्तु बार-बार आग्रह करने पर उन्होंने ग्रहण कर लिया और अपने छप्पर में खोंस देने के लिये कहा। तेरह दिन के बाद लौटकर उक्त साधु ने जब पारस पत्थर के बारे में पूछा तो संत रैदास का उत्तर था कि जहां रखा होगा, वहीं से उठा लो और सचमुच वह पारस पत्थर वहीं पड़ा मिला।

सत्य

सन्त रैदास ने सत्य को अनुपम और अनिवर्चनीय कहा है। वह सर्वत्र एक रस है, जिस प्रकार जल में तरंगे हैं, उसी प्रकार सारा विश्व उसमें लक्षित होता है। वह नित्य, निराकार तथा सबके भीतर विद्यमान है। सत्य का अनुभव करने के लिये साधक को संसार के प्रति अनासक्त होना पड़ेगा। संत रैदास के अनुसार प्रेममूलक भक्ति के लिये अहंकार की निवृत्ति आवश्यक है। भक्ति और अहंकार एक साथ संभव नहीं है। जब तक साधक अपने साध्य के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पण नहीं करता तब तक उसे लक्ष्य की सिद्धि नहीं हो सकती।

साधना

सन्त रैदास मध्ययुगीन इतिहास के संक्रमण काल में हुए थे। ब्राह्मणों की पैशाविक मनोवृत्ति से दलित और उपेक्षित पशुवत जीवन व्यतीत करने के लिये बाध्य थे। यह सब उनकी मानसिकता को उद्वेलित करता था। सन्त रैदास की समन्वयवादी चेतना इसी का परिणाम है। उनकी स्वानुभूतिमयी चेतना ने भारतीय समाज में जागृति का संचार किया और उनके मौलिक चिन्तन ने शोषित और उपेक्षित शूद्रों में आत्मविश्वास का संचार किया। परिणामतः वह ब्राह्मणवाद की प्रभुता के सामने साहसपूर्वक अपने अस्तित्त्व की घोषणा करने में सक्षम हो गये। सन्त रैदास ने मानवता की सेवा में अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। सन्त रैदास के मन में इस्लाम के लिए भी आस्था का समान भाव था। कबीर की वाणी में जहाँ आक्रोश की अभिव्यक्ति है, वहीं दूसरी ओर

सन्त रैदास की रचनात्मक दृष्टि दोनो धर्मों को समान भाव से मानवता के मंच पर लाती है। सन्त रैदास वस्तुतः मानव धर्म के संस्थापक थे।

धर्म

वर्णाश्रम धर्म को समूल नष्ट करने का संकल्प, कुल और जाति की श्रेष्ठता की मिथ्या सिद्धि सन्त रैदास द्वारा अपनाये गये समन्वयवादी मानवधर्म का ही एक अंग है, जिसे उन्होंने मानवतावादी समाज के रूप में संकल्पित किया था। 'जन्म जात मत पूछिये, का जात अरू पात। रविदास पूत सभ प्रभ के, कोउ नहि जात कुजात।'

भक्ति

उपनिषदों से लेकर महर्षि नारद और शाण्डिल्य ने भक्ति तत्त्व की अनेक प्रकार से व्याख्या की है। रैदास ने भक्ति में रागात्मिका वृत्ति को ही महत्व दिया है। नाम मार्ग और प्रेम भक्ति उनकी अष्टांग साधना में ही है। रैदास की अष्टांग साधना पद्धति उनकी स्वतंत्र व स्वछंद चेतना का प्रवाह है। यह साधना पूर्णतः मौलिक है।

समाज पर प्रभाव

रैदास की वाणी, भक्ति की सच्ची भावना, समाज के व्यापक हित की कामना तथा मानव प्रेम से ओत-प्रोत होती थी। इसलिए उनकी शिक्षाओं का श्रोताओं के मन पर गहरा प्रभाव पड़ता था। उनके भजनों तथा उपदेशों से लोगों को ऐसी शिक्षा मिलती थी, जिससे उनकी शंकाओं का सन्तोषजनक समाधान हो जाता था और लोग स्वतः उनके अनुयायी बन जाते थे। उनकी वाणी का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि समाज के सभी वर्गों के लोग उनके प्रति श्रद्धालु बन गये। कहा जाता है कि मीराबाई उनकी भक्ति-भावना से बहुत प्रभावित हुईं और उनकी शिष्या बन गयी थीं।

'वर्णाश्र अभिमान तजि, पद रज बंदहिजासु की।
सन्देह-ग्रन्थि खण्डन-निपन, बानि विमुल रैदास की॥'

रचनाएँ

रैदास अनपढ़ कहे जाते हैं। संत-मत के विभिन्न संग्रहों में उनकी रचनाएँ संकलित मिलती हैं। राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों में रूप में भी उनकी रचनाएँ

मिलती हैं। रैदास की रचनाओं का एक संग्रह 'बेलवेडियर प्रेस', प्रयाग से प्रकाशित हो चुका है। इसके अतिरिक्त इनके बहुत से पद 'गुरु ग्रंथ साहिब' में भी संकलित मिलते हैं। यद्यपि दोनों प्रकार के पदों की भाषा में बहुत अंतर है तथापि प्राचीनता के कारण 'गुरु ग्रंथ साहब' में संग्रहीत पदों को प्रामाणिक मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। रैदास के कुछ पदों पर अरबी और फारसी का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। रैदास के अनपढ़ और विदेशी भाषाओं से अनभिज्ञ होने के कारण ऐसे पदों की प्रामाणिकता में सन्देह होने लगता है। अतः रैदास के पदों पर अरबी-फारसी के प्रभाव का अधिक संभाव्य कारण उनका लोकप्रचलित होना ही प्रतीत होता है।

महत्व

आज भी सन्त रैदास के उपदेश समाज के कल्याण तथा उत्थान के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने अपने आचरण तथा व्यवहार से यह प्रमाणित कर दिया है कि मनुष्य अपने जन्म तथा व्यवसाय के आधार पर महान् नहीं होता है। विचारों की श्रेष्ठता, समाज के हित की भावना से प्रेरित कार्य तथा सदव्यवहार जैसे गुण ही मनुष्य को महान् बनाने में सहायक होते हैं। इन्हीं गुणों के कारण सन्त रैदास को अपने समय के समाज में अत्यधिक सम्मान मिला और इसी कारण आज भी लोग इन्हें श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं। संत कवि रैदास उन महान् सन्तों में अग्रणी थे, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। इनकी रचनाओं की विशेषता लोक-वाणी का अद्‌भुत प्रयोग रही हैं, जिससे जनमानस पर इनका अमिट प्रभाव पड़ता है।

मधुर एवं सहज संत रैदास की वाणी ज्ञानाश्रयी होते हुए भी ज्ञानाश्रयी एवं प्रेमाश्रयी शाखाओं के मध्य सेतु की तरह है। गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी रैदास उच्च-कोटि के विरक्त संत थे। उन्होंने ज्ञान-भक्ति का ऊंचा पद प्राप्त किया था। उन्होंने समता और सदाचार पर बहुत बल दिया। वे खंडन-मंडन में विश्वास नहीं करते थे। सत्य को शुद्ध रूप में प्रस्तुत करना ही उनका ध्येय था। रैदास का प्रभाव आज भी भारत में दूर-दूर तक फैला हुआ है।

❐❐❐